दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2497 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 4

अध्यात्म-पद

[राग-मल्हार]

अब मेरैं समकित सावन आयो ॥टेक ॥
बीती कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ॥अब० ॥
अनुभव दामिनि दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो।
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिनि भायो ॥अब० ॥
गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहँसायो।
साधक भाव अँकूर उठे बहु, जिस तित हरष सवायो ॥अब० ॥
भूल धूल कहिं मूल न सूझत समरस जल झर लायो।
'भूधर' को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ॥अब० ॥

चारित्र
ज्ञान
दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अगस्त : 1971] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (316) एक अंक 25 पैसा [श्रावण : 2497

धर्मधुरन्धर अमरविजेता मल्लजी

[आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजी के प्रति—]

साररूप सर में अवगाहन कर जीवन रस पा लेते,
नव प्रकाश नवानुभूति नव चेतन जो जग को देते।
क्षर से अक्षर पा लेने को जो प्रकाश फैलाते हैं,
सबमें मंगल प्रेरित है, जो जीवन रस बरसाते हैं।
जो अपमान उपेक्षा पीकर पीकर घृणा व्यथा घनघोर,
शिव बनते मानव के स्तार से उठकर अंतरतम की ओर।
शिखर न जो बनकर भवनों के बनते जो दृढ़ नींव अवश्य,
ख्याति नहीं है, साथि नहीं है पथ उनका है किंतु प्रशस्त।
दूर उपेक्षित भी जग को नवप्राण-स्फूर्ति देते अविराम,
असीम कठिनता पर ज्ञाता है, वज्रमूर्ति निर्भय है राम।
जिनमत को मथकर जो रुचिकर, परोसते नित समरस ज्ञान,
वीर विजेता दृढ़तर बली को भय-तृष्णा का कुछ नहिं काम।
वे हैं अमरलोक के मानव बली हुए भी सदा अमर,
क्योंकि दिव्य प्रकाश पुंज से उनने जग का हरा तिमिर।

[पंडित श्री चैनसुखदासजी]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

अगस्त : 1971 ☆ श्रावण : वीर नि० सं० 2497, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 4

परम प्रशंसनीय दशा

मैं तो जगत का साक्षी, स्वयं सुख का पिण्ड हूँ; उसमें आकुलता कैसी? अपने सुखानुभव के लिये मैं किसी अन्य को ग्रहण करूँ या छोड़ूँ—यह बात मेरे स्वरूप में है ही नहीं। बाह्यपदार्थ सदा मुझसे छूटे हुए—पृथक् ही हैं, उनका ग्रहण या त्याग मुझमें नहीं है। मेरा आत्मा ज्ञान और सुखस्वरूप है; उसमें उपयोग की एकाग्रता हुई, वहाँ शुभाशुभ भी छूट गये और परम वीतराग सुख का अनुभव रहा। अहो, ऐसी शुद्धोपयोगदशा ही परम प्रशंसनीय है।

शुद्धोपयोगरूप धर्म ही मोक्षमार्ग है

जयपुर शहर में जेष्ठ कृष्णा 6 से जेष्ठ शुक्ला दसमी, बीस दिन तक अध्यात्म-ज्ञान प्रचार का महान उत्सव हुआ, उस समय टोडरमल स्मारक भवन में पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का हजारों श्रोताओं ने लाभ लिया; समयसार गाथा 6 से 15 तक प्रवचनसार गाथा 1 से 16 तक के उन प्रवचनों के सार का कुछ भाग गतांक में दिया था; आगे का भाग यहाँ दिया जाता है।

हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों!

वीतराग के इस आनंद-उत्सव में पधारो... पधारो... पधारो।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी शुद्धोपयोग से मोक्षलक्ष्मी की साधना करते हुए उसके मंगलरूप कहते हैं कि—अहो, इस मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर में मैं पंचपरमेष्ठी भगवंतों को मेरे आँगन में बुलाता हूँ; हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों! हे विदेहक्षेत्र में विराजमान सीमंधर भगवंतों! गणधर भगवंतों! आप सभी वीतराग के इस आनंद-उत्सव में पधारो.. पधारो...। मेरी शुद्ध चैतन्यसत्ता का निर्णय करके उसमें आपको पधराता हूँ, और समस्त रागादि परभावों को जुदा करता हूँ, ऐसे मंगलपूर्वक मोक्ष को साधने का यह मंगल स्थंभ रोपा जाता है।

शुद्धोपयोग धर्म, वही मोक्षमाग है, उसका अलौकिक वर्णन इस प्रवचनसार में है। जैन मुनि ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणमे हैं। अहा, धन्य उनका अवतार! धन्य उनकी दशा!! मोक्ष उनको अत्यंत निकट है। चैतन्य के केवलज्ञान के कपाट खोलने के लिए वे कटिबद्ध हुए हैं—ऐसी मुनिदशा होती है। ऐसे मुनि को तो हम 'भगवान' मानते हैं। समस्त परिग्रह छोड़कर, आत्मज्ञान के उपरांत शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म को अंगीकार किया है। कदाचित् शुभ उपयोग होता है, परंतु उससे उदासीन है, अशुभ परिणति तो उनकी होती ही नहीं; देह की क्रिया सहजरूप से अनेक प्रकार की होती है, उसमें खींचतान नहीं करते। बाह्य में संपूर्ण दिगम्बर जैन

सौम्य मुद्रा के धारक और अंतर में शुद्धोपयोग परम समता के धारक ऐसे वीतरागी संत-मुनियों के चरणों में नमस्कार हो... नमस्कार हो... णमो लोए सव्वसाहूणं।

अहो, परम पद को प्राप्त हुए ऐसे पंचपरमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया, उसमें शुद्धात्मा का ही आदर है। मुनियों को नमस्कार किया, उन मुनियों को शुद्धोपयोग है तथा साथ में अभी विकल्प भी है, परंतु वह विकल्प कुछ वंदनीय नहीं, वंदनीय तो शुद्धोपयोग है—ऐसे विवेकपूर्वक नमस्कार किया है।

नमस्कार करने के समय स्वयं को जो शुभविकल्प है, उसे वह आदरणीय नहीं मानता; नमस्कार करनेयोग्य जो शुद्धोपयोग है, उसे ही आदरणीय मानता है। यदि राग को आदरणीय माने तो सच्चा नमस्कार नहीं होता; क्योंकि वह तो राग की ओर झुक गया है।

पंचपरमेष्ठी—उनमें चैतन्यसत्तावाले अनेक तीर्थंकर लाखों अरिहंत, अनंत सिद्ध भगवान तथा शुद्धोपयोगरूप परिणमे हुए करोड़ों मुनिवर... उन्हें पहिचानकर जिस ज्ञान ने उनकी शुद्धसत्ता का स्वीकार किया, उस ज्ञान की शक्ति कितनी ? वह ज्ञान, राग में नहीं रुका; उसने तो राग से पार होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव को स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप किया है। इसप्रकार अपने शुद्ध आत्मतत्त्व के निर्णयपूर्वक पंचपरमेष्ठी को सच्चा नमस्कार होता है; वह मोक्ष के उत्सव का अपूर्व मंगलाचरण है। सम्यग्दर्शन भी अतीन्द्रिय आनंद का उत्सव का प्रसंग है, तथा मुनिदशा तो उग्र अतीन्द्रिय आनंद के उत्सव का प्रसंग है, उसका यह मंगल मुहूर्त होता है।

जेष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन समयसार गाथा 6 में बताया कि देखो, यहाँ आत्मा का शुद्धस्वरूप दिखाते हैं। 'आत्मा शुद्ध है' ऐसा कब कहा जाता है ?—कि जब आत्मा के सन्मुख होकर उसकी उपासना करे तब आत्मा को शुद्ध जाना—ऐसा कहा जायेगा।

कोई कहे—आपने आत्मा को शुद्ध कहा, सो हमने स्वीकार लिया !

उसे आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई ! किसके सन्मुख देखकर तूने स्वीकार किया ? मात्र शब्द सुनकर 'हाँ' कहे, वह तो विकल्प है, उसको यथार्थ स्वीकार नहीं कहते। शब्दों के वाच्यरूप स्ववस्तु अंतर में कैसी है, उसके लक्ष्यपूर्वक ही उसका सच्चा स्वीकार होता है। वस्तु स्वयं के ज्ञान में आये, तभी उसका सच्चा स्वीकार होता है। ज्ञान के बिना अज्ञान में स्वीकार किसका ? इसप्रकार स्वसन्मुख होकर ही शुद्ध आत्मा का स्वीकार होता है। इसलिये कहा है

कि समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्नरूप उपासना करने में आये, तब ज्ञायकभाव को 'शुद्ध' कहा जाता है। शुद्ध आत्मा की उपासना में अनंत गुणों की निर्मल पर्यायों का समावेश हो जाता है।

प्रश्न—वस्त्रसहित दशा में ऐसे आत्मा का निर्विकल्प अनुभव होता है ?

उत्तर—हाँ, ऐसे आत्मा का निर्विकल्प अनुभव सवस्त्रदशा में भी हो सकता है; तथा ऐसा अनुभव करे, तभी सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् मुनिदशा में तो बहुत ही उग्र निर्विकल्प अनुभव बारंबार होता है। गृहस्थ को तो कभी-कभी निर्विकल्प अनुभव होता है; परंतु ऐसे अनुभव से ही धर्म का प्रारंभ होता है, इसके बिना धर्म नहीं होता।

आत्मा 'ज्ञायकस्वभावी' है।

'ज्ञायक' पर को जानता है—ऐसा ज्ञेय-ज्ञायकपने का व्यवहार है; तो भी ज्ञेय की उपाधि उसे नहीं है। ज्ञेय है, इसलिये इसको ज्ञायकपना है—ऐसा नहीं, ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं; परज्ञेय की ओर न देखे और स्वयं अपने स्वरूप को ही स्वसन्मुख होकर जाने, तब भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है—परज्ञेयों की अपेक्षा ज्ञायक की नहीं। पर सन्मुख होकर जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं, इसलिये ज्ञान में पर की उपाधि नहीं।

अहो, ज्ञायक का ज्ञायकपना स्वतः अपने से ही है। परज्ञेय को जानने के समय भी वह तो स्वयं से ही ज्ञायक है; तथा परज्ञेय को न जाने, तब स्वज्ञेय को (स्वयं को) जानता हुआ वह स्वयं 'ज्ञायक' ही है। स्व-परप्रकाशक शक्ति स्वयं अपने से है, उसमें परज्ञेय की उपाधि या आलंबन नहीं।

आत्मा में वीतरागता की रचना करे, वह सच्चा आत्मवीर्य है, किंतु रागादि विकार को उत्पन्न करके संसार में भ्रमण करे, उसे सच्चा आत्मवीर्य नहीं कहते। यहाँ तो जो मुमुक्षु चारों गतियों के दुःखों से डरकर आत्मा का हित करना चाहता है, उसकी बात है। चारों गतियों का जिसे भय हो, वह उनके कारणरूप पुण्य को क्यों इच्छेगा ? जिसको पुण्य में मीठास लगती है, पुण्य का आदर है, उसे चारों गतियों का भय नहीं है, उसे नरक का भय है किंतु स्वर्ग की तो इच्छा है। जो पुण्य को इच्छता है, उसे स्वर्ग की इच्छा है, और जो स्वर्ग को इच्छता है, उसे संसार की इच्छा है। जिसे मोक्ष की इच्छा हो, वह संसार के कारणरूप शुभराग को कभी भला न माने; वह तो चैतन्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाले वीतराग भाव को ही भला मानता है।

शुभराग का अंश भी धर्मी को कषाय की अग्नि समान लगता है। कहाँ वीतरागता की शांति और कहाँ राग की आकुलता? जैसे शीतल जल में रहनेवाला मच्छ अग्नि में तो जलता है किंतु गर्म रेत में भी उसे जलने का दुःख होता है; उसीप्रकार चैतन्य में शुद्धोपयोग की जो वीतरागी शीतल शांति—उसमें रहनेवाले संतों को अशुभ की तो क्या बात, परंतु शुभ में भी कषाय-अग्नि होने से आकुलता की जलन होती है, धर्मी उसे भी छोड़कर शुद्धोपयोगरूप समभाव को प्राप्त करना चाहता है, और वही मोक्षमार्ग है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कषाय-अंश ऐसे शुभ को छोड़कर अन्तर में शुद्धोपयोगरूप साम्यभाव को अंगीकार किया; अर्थात् आत्मा में साक्षात् मोक्षमार्ग परिणमित किया। देखो, मोक्षमार्ग प्रगट होता है, उसकी स्वयं जीव को खबर होती है। प्रथम निर्विकल्प अनुभूति सहित सम्यग्दर्शन होता है, तब मोक्षमार्ग शुरु होता है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन के उपरांत चारित्रदशा की और उसमें भी शुद्धोपयोग की बात है। शुद्धोपयोग ही साक्षात् मोक्षमार्ग है।

ज्ञायकभाव का अनुभव कराने के लिए समयसार की छठवीं गाथा में पर्याय-भेदों का निषेध किया, अर्थात् पर्यायभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार छुड़ाया; और सातवीं गाथा में गुणभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार को छुड़ाया है। इसप्रकार व्यवहार से पार एकरूप ज्ञायकभाव का निर्विकल्प अनुभव हो, तब शुद्ध आत्मा जानने में आता है। इसप्रकार भेदरहित शुद्ध आत्मा का अनुभव करके उसे शुद्ध आत्मा कहा है। विकल्प और भेद का अनुभव, वह अशुद्धता है; आत्मा के अनुभव में उसका अभाव है।

ऐसे आत्मा का अनुभव होने से चौथा गुणस्थान प्रगट हुआ, अर्थात् अपने में अपने परमात्मा का अनुभव हुआ; (परमात्मा की भेंट हुई)। इस परमात्मा में विभाव है ही नहीं, इसलिये उसकी चिंता परमात्मा में नहीं है। ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाला धर्मी कहता है कि अहा! ऐसा हमारा परमात्म तत्त्व! उसमें विभाव है ही कहाँ—कि हम उसको नष्ट करने की चिंता करें? हम तो विभाव से पार ऐसे अपने परम तत्त्व का ही अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति, वही मुक्ति को स्पर्श करती है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रकार से मुक्ति नहीं—नहीं।

जो शुद्ध परम तत्त्व है, उसके अनुभव में ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनंद सभी का समावेश हो जाता है; किंतु मैं ज्ञान हूँ—मैं दर्शन हूँ—मैं चारित्र हूँ—ऐसे विकल्पों का परम तत्त्व में प्रवेश

नहीं है; अतः आत्मा को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद से कहना, वह भी व्यवहार है, ऐसे व्यवहार के आश्रय से विकल्प होता है, शुद्धतत्त्व अनुभव में नहीं आता, अभेद के आश्रय से शुद्धतत्त्व का निर्विकल्प अनुभव होता है।

'निकटवर्ती शिष्य को' अभेद समझाते समय बीच में भेद आ जाता है। शिष्य कैसा है ?—निकटवर्ती है, उसमें दो प्रकार हैं।

— एक तो स्वभाव के पास आया है और शीघ्र ही स्वभाव को अनुभवनेवाला है, इसलिये निकटवर्ती है।

— दूसरा, समझने की जिज्ञासापूर्वक ज्ञानी गुरु के निकट आया है, इसलिये निकटवर्ती है।

— इस रीति से भाव तथा द्रव्य उन दोनों प्रकार से निकटवर्ती है।

स्वभाव बात सुनकर भड़ककर दूर नहीं भागता, परंतु स्वभाव की बात सुनने के लिए प्रेम से नजदीक आता है, और सुनकर उसकी रुचि करके स्वभाव में नजदीक आता है। ऐसा निकटवर्ती शिष्य व्यवहार के भेदरूप कथन में न अटककर उसका परमार्थ समझकर आत्मा के स्वभाव का अनुभव कर लेता है। कैसा अनुभव करता है—कि अनंत धर्मों को जो पी गया है, और जिसमें अनंत धर्मों का स्वाद परस्पर किंचित् मिल गया है—ऐसे एक अभेद स्वभावरूप स्वयं को अनुभवता है। वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद का अनुभव नहीं करता, ऐसा अनुभव करने के लिए तत्पर होनेवाले निकटवर्ती शिष्य के लिए इस शुद्धात्मा का उपदेश है। स्वयं के स्वानुभव से ही ऐसा आत्मा प्राप्त होता है, दूसरी किसी रीति से प्राप्त नहीं होता।

धर्मी तथा धर्म के बीच स्वभावभेद नहीं; तथापि भेद का विकल्प करे तो एक धर्मी-आत्मा अनुभव में नहीं आता; भेदरूप व्यवहार से पार, अनंत धर्मस्वरूप एक आत्मा को सीधा लक्ष्य में लेने से निर्विकल्परूप से शुद्ध आत्मा अनुभव में आता है।

अपनी चैतन्यवस्तु का अनुभव करने पर गुण-गुणी भेद का विकल्प भी नहीं रहता, निर्विकल्प आनंद का अनुभव रहता है। मात्र आनंद का नहीं किंतु अनंत गुणों का रस अनुभव में एक साथ आता है। सम्यग्दर्शन होने पर ऐसी दशा होती है।

सम्यग्दर्शन के समय शुद्धोपयोग होता है; किंतु 'यह शुद्धोपयोग और मैं आत्मा' ऐसा भेद भी वहाँ नहीं; अभेद एक वस्तु का ही अनुभव है। मैं शुद्ध हूँ—ऐसा भी विकल्प अनुभूति

में नहीं। 'मैं ज्ञायक हूँ'—ऐसे विकल्प से क्या साध्य है ? उस विकल्प में आत्मा नहीं, विकल्प से पार होकर ज्ञान जब स्व-सन्मुख एकाग्र हुआ, तब आत्मा साक्षात् अनुभव में आया, तब वह ज्ञान इन्द्रियों से तथा आकुलता से पार होकर आत्मा के सन्मुख हुआ। आत्मा स्वयं के यथार्थ स्वरूप से अपने में प्रसिद्ध हुआ।—ऐसी सम्यग्दर्शन की रीति है।

मिथ्यात्व तो अनादि का है, लेकिन ज्ञान जहाँ जागृत हुआ व ज्ञानस्वभावरूप अपना निर्णय करके, राग से भिन्न होकर स्वसन्मुख हुआ, तब एक क्षण में सम्यग्दर्शन होता है। एक क्षण में मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्रगट करने की आत्मा में अचिंत्य शक्ति है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए आचार्यदेव शुद्ध आत्मा का स्वरूप समझाते हैं, तब शिष्य आँखें फाड़कर अर्थात् समझने की जिज्ञासा से ज्ञान को एकाग्र करके लक्ष्य में लेता है; उसे शुद्धात्मा को लक्ष्य में लेने की भावना है। सुनते-सुनते उसे नींद नहीं आती, अथवा शंका नहीं होती या कंटाला नहीं आता, परंतु समझने के लिए ज्ञान को एकाग्र करता है।

शुद्धात्मा का स्वरूप सुनते ही उसमें उपयोग एकाग्र करता है, प्रमाद नहीं करता, 'पीछे विचार करूँगा; घर जाकर करूँगा, फुरसत मिलने पर करूँगा'—ऐसी बेदरकारी नहीं करता, किंतु तत्काल ही शुद्धात्मा में उपयोग को एकाग्र करके आनंदपूर्वक अनुभव करता है।—ऐसी उत्तम पात्रतावाला शिष्य शीघ्र ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। जैसे ऋषभदेव के जीव को जुगलिया के भव में मुनियों ने सम्यग्दर्शन का उत्तम उपदेश देकर कहा कि हे आर्य! तू अभी ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण कर (तत्गृहाणाद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एष ते।)—उसी समय अंतर्मुख होकर उस जीव ने सम्यग्दर्शन प्रगट किया।—इसप्रकार यहाँ उत्तम पात्रतावाले जीव की बात की है।

श्रीगुरु ने ज्ञायकस्वभावी आत्मा को समझाने के लिए भेद से कहा कि 'ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मा है', इतना सुनकर शिष्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद के विकल्प में खड़ा नहीं रहा, परंतु भेद को छोड़कर अभेद में एकाग्र करके सीधा आत्मा को पकड़ लिया कि अहो! ऐसा मेरा आत्मा गुरु ने मुझे बताया। इसप्रकार श्रीगुरु ने भेद द्वारा अभेद आत्मा को समझाया तथा पात्र शिष्य भी तत्काल भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद आत्मा को समझ गया। विलंब नहीं किया, दूसरे किसी लक्ष्य में नहीं अटका, किंतु शीघ्र ही ज्ञान को अंतर में एकाग्र

करके आत्मा को समझ गया; उसी समय अत्यंत आनंद सहित सुंदर बोध तरंग उछलने लगी। अहा, ज्ञान के साथ परम आनंद की लहरें उछल पड़ी... मानो परिपूर्ण आनंद का सागर ही उछला हो। अपने में ही आनंद का सागर देखा। निर्विकल्प अनुभूति से भगवानस्वरूप स्वयं ही अपने में प्रगट हुआ।

जैसे इस शिष्य ने तत्काल निर्विकल्प आनंदसहित आत्मा का अनुभव किया, वैसे प्रत्येक जीव में ऐसा अनुभव करने की शक्ति है। वाणी में या विकल्प में कहीं भी न अटककर अंतर में ज्ञान को एकाग्र किया, तभी अतीन्द्रिय ज्ञान की तरंगें परम आनंद के अनुभवसहित प्रगट हुईं। सम्यग्दर्शन होने के समय का यह वर्णन है।

श्रोता-शिष्य ऐसा पात्र था कि भेद की दृष्टि छोड़कर सीधा अभेद में एकाग्र हो गया... भेद-व्यवहार-शुभ का आलंबन छोड़ने में उसे संकोच नहीं हुआ; शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में लेते ही अपूर्व आनंद सहित ऐसा निर्मल ज्ञान प्रगट हुआ कि सभी भेद-व्यवहार-राग का आलंबन छूट गया। ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता अनुभव में आ गई। ज्ञान के साथ आनंद होता है; जिस ज्ञान में आनंद का वेदन नहीं, वह सच्चा ज्ञान ही नहीं। आनंदरहित मात्र ज्ञान के विकास को वास्तव में ज्ञान नहीं कहते। केवल परलक्षी ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं।

शिष्य सीधा अभेद में नहीं पहुँच सका था, तब तक बीच में भेद था, श्रीगुरु ने भी भेद से समझाया था, किंतु वह भेद, भेद का आलंबन कराने के लिए नहीं था, वक्ता या श्रोता किसी को भेद के आलंबन की बुद्धि नहीं थी, उनका अभिप्राय तो अभेद वस्तु को ही बताकर उसी का अनुभव करने का था। उस अभिप्राय के बल से ज्ञान को अंतर के अभेद स्वभाव में एकाग्र करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का अवलंबन भी छोड़ दिया... और तत्काल ही महान अतीन्द्रिय आनंदसहित सम्यग्ज्ञान की सुंदर तरंगें उल्लसित हो उठीं... सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान तथा परम आनंद हुआ। ऐसी निर्विकल्प अनुभूतिसहित शिष्य निज शुद्धात्मा का स्वरूप समझा।

जो ऐसे भाव से समयसार सुने, उसे भी निर्विकल्प आनंद के अनुभव सहित सम्यग्दर्शन अवश्य होगा। यहाँ तो कहते हैं कि—विलंब न होकर तत्काल ही होगा। निज आत्मा की प्राप्ति के लिए जिसकी सच्ची तैयारी हो, उसे अवश्य एवं शीघ्र ही उसकी प्राप्ति हो

जायेगी; अरे, आकाश में से उतरकर संत उसे शुद्धात्मा का स्वरूप समझायेंगे।—जैसे महावीर के जीव को सिंह के भव में, और ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि के भव में सम्यक्त्व प्रगट करने की तैयारी होने से ऊपर से गगन-विहारी मुनियों ने वहाँ उतरकर उनको आत्मा का स्वरूप समझाया, और उन जीवों ने भी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। किसप्रकार से प्राप्त किया? वह बात इस गाथा में समझाई है। भेद का लक्ष्य छोड़कर, अनंत धर्मों से अभेद आत्मा में ज्ञान को एकाग्र करने से, निर्विकल्प आनंद के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन प्राप्त किया... सुंदर बोध तरंगें उल्लसित हुईं। इसप्रकार तत्काल सम्यग्दर्शन होने की रीति समझाकर संतों ने तो मार्ग सरल कर दिया है।

आत्मा की अनुभूति

विकार से भिन्न आत्मा का अनुभव होता है, शरीर से भिन्न आत्मा का अनुभव होता है, परंतु ज्ञान से या आनंद से भिन्न आत्मा का अनुभव नहीं होता, क्योंकि विकार और शरीर वह आत्मा के स्वभाव की वस्तु नहीं हैं, इसलिये वे शुद्धात्मा के अनुभव में साथ नहीं रहते; परंतु ज्ञान और आनंद तो आत्मा के स्वभाव की वस्तु हैं, इसलिये वे तो शुद्धात्मा के अनुभव में साथ ही रहते हैं।

—इसप्रकार समस्त परभावों से भिन्न और अपने ज्ञानादि निजभावों से अभिन्न—ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति, सो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

श्रुतपंचमी

[जयपुर में ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी का प्रवचन]

हे जीव! परम आनंद की प्राप्ति हेतु शुद्धोपयोगरूप परिणमित हो, यह उसका अवसर है।

आज ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी (श्रुतपंचमी) का महान दिन है, जिनवाणी में कहे गये वीतरागी ज्ञान की महिमा तथा उसकी आराधना का आज दिन है। अंकलेश्वर (गुजरात) में दो हजार वर्ष पूर्व श्रुत की रचना (षट्खंडागम सिद्धांत ग्रंथ की रचना पूर्ण हुई थी) महान उत्सव मनाया गया था। चतुर्विध संघ ने श्रुत के बहुमानपूर्वक पूजन किया था। उसी दिन से यह दिन श्रुतपंचमी के रूप में मनाया जाता है। षट्खंडागम महावीर की वाणी के साथ संबंध रखता है।

भगवान महावीर की वाणी को ग्रहण करके गणधरदेवों द्वारा गूँथा हुआ बारह अंग का ज्ञान परंपरागत क्षीण होते-होते 683 वर्ष बाद धरसेनस्वामी को मिला। रत्नत्रय के धारी धरसेनस्वामी दिगंबर संत और श्रुतज्ञान के समुद्र थे। वे गिरनार की चंद्रगुफा के एकांत में आत्मसाधना करते थे। इस पत्र के संपादक ने भी गिरनार की उस चंद्रगुफा को देखा है एवं षट्खंडागम, समयसार आदि की स्वाध्याय की है। पर्वत के ऊपर रहनेवाले दिगंबर पुजारी से कहने पर वह साथ आकर गुफा दिखाता है। दिगंबर मंदिर से करीब 15 मिनिट का रास्ता है। चंद्रगुफा में निवास करते हुए धरसेन मुनिराज को अपनी अल्पायु का आभास होने पर उन्हें श्रुत की रक्षा का विकल्प उठा कि— भगवान की परंपरा से प्राप्त श्रुतज्ञान अछिन्न रहे, अतः मैं मुनियों को ज्ञान दूँ। इसकारण उन्होंने दक्षिण देश से दो मुनियों को बुलाया। जब वे मुनि आ रहे थे, तब धरसेनस्वामी ने स्वप्न में दो उत्तम सफेद वृषभों को आते हुए एवं चरणों में नमन करते हुए देखा। श्रुत की धुरी का भार वहन करने में सामर्थ्यवान ऐसे दो मुनियों का आगमन जानकर तथा उनके द्वारा श्रुत की धारा अच्छिन्न रहेगी, ऐसा जानकर प्रसन्नतापूर्वक उनके मुख से आशीर्वाद निकला कि 'जय हो श्रुतदेवता!'

पश्चात् वे महा विनयवंत, बुद्धिमान, वीतरागी मुनि आये। धरसेनस्वामी ने पुष्पदंत

और भूतबली मुनि को गिरनार पर षट्खंडागम सिद्धांत का अलौकिक ज्ञान दिया। जब पढ़ाई पूरी हुई, तब देवों ने भी मुनियों की पूजा करके श्रुत का बहुमान किया।

ज्ञान प्राप्त करके मुनि वहाँ से विदा हुए तथा अंकलेश्वर में षट्खंडागम के ज्ञान को सूत्रों के रूप में गूँथा। उसी जिनवाणी की पूजा का आज दिन है।

जिनवाणी महान पूज्य है; महान भाग्य से षट्खंडागम रह गये और वीरसेनस्वामी ने उसकी धवला टीका रची; यह टीका भी अलौकिक है। उसका हिन्दी में भाषांतर होकर 16+7=23 पुस्तकों के रूप में छपकर प्रकाशित हो गई है। पहले मूडबद्री में बड़ी कठिनाई से दर्शन होते थे। श्रुतज्ञान का भंडार उसमें भरा हुआ है। एक ओर समयसारादि अध्यात्म श्रुतज्ञान अखंड रह गया है जो कि शुद्धात्मा का स्वरूप दिखाता है, तथा दूसरी ओर षट्खंडागम जैसे सिद्धांतसूत्र भी अखंड रह गये हैं। दोनों प्रकार के परमागमों द्वारा वीतराग श्रुत की अखंड धारा चली आ रही है। उसका बहुमानपूर्वक अभ्यास करने जैसा है।

अहा, धरसेनस्वामी और कुंदकुंदस्वामी आदि मुनि तो ज्ञान के समुद्र थे। अहो! यह मुनि तो मानों सर्वज्ञ हों! जिनको देखने से ही सर्वज्ञ की प्रतीति हो जाये... ऐसे मुनि तथा सर्वज्ञ में कोई अंतर नहीं होता है।—ऐसा नियमसार में कहा है।

सर्वज्ञ भगवान की वाणीरूप जो प्रवचनसार उसमें 13वीं गाथा में शुद्धोपयोग के फलरूप जो शुद्धात्म-प्राप्ति, उसकी प्रशंसा की है। शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति का साधन शुद्धोपयोग है, शुद्धोपयोग द्वारा अन्य किसी भी कारण की अपेक्षा बिना आत्मा स्वयं छह कारकरूप होकर केवलज्ञानरूप परिणमित होता है। शुद्धोपयोगी आत्मा स्वयं अपने ही आधीन होकर स्वतंत्ररूप से केवलज्ञानरूप होता है अर्थात् शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त करता है।

शुद्धोपयोगदशा चौथे गुणस्थान में भी होती है। धर्म का प्रारंभ शुद्धोपयोग द्वारा होता है। चौथे गुणस्थान में भी कभी-कभी शुद्धोपयोग होता है; कभी किसी समय तथा कभी महीने में एकबार भी होता है। पाँचवें गुणस्थान में उससे विशेष शुद्धोपयोग होता है और वह कुछ-कुछ समय के अंतर से होता है। मुनिदशा में तो बारंबार अंतर्मुहूर्त में शुद्ध निर्विकल्प उपयोग होता रहता है। अहो! शुद्धोपयोग दशा की क्या बात? शुद्धोपयोगी अपने को निर्विकल्पता से सिद्ध भगवान जैसे आनंदरूप अनुभवता है।

ऐसा शुद्धोपयोग ही धर्म है, वही केवलज्ञान का साधन है। शुद्धोपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। दूसरे साधन द्वारा कोई केवलज्ञान चाहे तो उसे धर्म के साधन की भी खबर नहीं है। राग से भी शुद्धोपयोग अपूर्व है। उसका फल भी अनंत आनंदमय है। ऐसा शुद्धोपयोग और उसका फल अत्यंत प्रशंसनीय है; उसमें उत्साह करने जैसा है।

ऐसा शुद्धोपयोग अपने में हो, तभी धर्म हुआ कहलाता है। उसी ने श्रुतज्ञान को पहिचाना है। श्रुतज्ञानरूप जिनवाणी तो पर से भिन्न आत्मा बतलाकर शुद्धोपयोग कराती है। शुद्धोपयोगी होकर जिसने ज्ञानस्वभाव का अनुभव किया, उसी ने श्रुतज्ञान को जाना कहा जाता है। श्रुतज्ञान का फल ज्ञानस्वभाव का अनुभव है। ज्ञान का जिसने अनुभव नहीं किया, उसका श्रुतज्ञान सच्चा नहीं है। कदाचित् वह ग्यारह अंगों का पाठी हो, तथापि उसके ज्ञान को सच्चा ज्ञान नहीं कहते। वह मोक्षमार्ग को नहीं साधता। ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख होकर राग से जो ज्ञान भिन्न हुआ, वही सच्चा ज्ञान है, वही मोक्षमार्ग को साधता है, ऐसे ज्ञान की उत्पत्ति शुद्धोपयोगपूर्वक ही होती है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीवो! परम आनंद की प्राप्ति के लिए तुम ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणमन करो... उसका यह अवसर है।

सुखी होने के लिये प्रथम क्या करें ?

[श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ का स्वाध्याय कीजिये]

संयोगीदृष्टि और संयोगी भाव के आलंबन से दु:ख हो रहा है। संयोग किसी को सुख-दु:ख दे नहीं सकते। इस संसार में सभी प्राणी अनादि काल से चारों गतियों में जन्म-मरण करते-करते महान दु:ख उठा रहे हैं। तिर्यंच (पशु-पक्षी आदि) और मनुष्य गति के भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मारण-ताड़न आदि शारीरिक एवं मानसिक दु:ख प्रत्यक्ष ही दिखते हैं। जिन्हें देखकर कौन भयभीत नहीं होता ? किंतु आश्चर्य यह है कि फिर भी अधिकांशत: जीव वास्तविकता से अनभिज्ञ होकर, झूठे, नाशवान पराधीन इन्द्रिय-जनित दु:खों को सुख की भ्रमणा में अनंत दु:ख परिपाटी को भोग रहे हैं। और जो थोड़े से जीव संसार दु:खों से ऊब भी जाते हैं, उन्हें सच्चे सुख का यथार्थ मार्ग ज्ञात नहीं है, अत: वे दु:ख निवारण का उल्टा उपाय करके दलदल में फँसे हाथी या जाल में फँसे मृग की भाँति-जितना प्रयत्न करते हैं, उतना और उलझते जाते हैं।

क्या आपने भी कभी एकांत में बैठकर इस रहस्य पर विचार किया है कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? और इस क्षणभंगुर लीला को समाप्त करके कहाँ चला जाऊँगा ? अपार जैन समूह बचपन से बुढ़ापे तक, सुबह से शाम तक और यहाँ तक कि दिन-रात, खाने-कमाने और शरीर की व्यवस्था में व्यस्त हैं। और कभी इन तथ्यों पर दृष्टि डालने का सुयोग ही नहीं निकालता।

किंतु वास्तव में सच्चे सुख की प्राप्ति और दु:खों से बचने का उपाय स्वाध्याय से ही विदित होता है। स्वाध्याय शब्द स्वयं ही चरितार्थ करता है—

(स्व+अध्ययन) अर्थात् आत्म-निरीक्षण। स्वाध्याय गृहस्थ के षट् आवश्यकों में मुख्य है क्योंकि शेष पाँच आवश्यकों का वास्तविक स्वरूप तथा उन्हें आचरण करने का सम्यक् प्रकार स्वाध्याय से ही जाना जाता है। अत: स्वाध्याय द्वारा कल्याण के मर्म को हृदयंगम करके उसे जीवन में उतारना चाहिए।

अब विचार यह करना है कि किन शास्त्रों का स्वाध्याय करना विशेष हितकर है।

वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की धारा प्रवाहरूप विशाल उपदेश गंगा में से भरे हुए कलशों के समान इस समय भी जैन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महान ग्रंथ षट्-खंडागम, अष्टपाहुड़, नियमसार, जयधवल, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, पंचाध्यायी, रत्नकरण्ड -श्रावकाचार, गोम्मटसार आदि संस्कृत प्राकृत के ग्रंथ उपलब्ध ग्रंथ हैं। जिनके अध्ययन के लिए न्याय, व्याकरण आदि का विशेष ज्ञान एवं समय की आवश्यकता है किंतु हम जैसे अल्प आयु और अल्प ज्ञानवाले जीवों को उन महान ग्रंथों के निचोड़रूप अमृत-प्याले के समान ऐसे संक्षिप्त ग्रंथों के स्वाध्याय की आवश्यकता है जो सरल सुगम भाषा में द्वादशांग वाणी के सार को समझानेवाले हों। ऐसे ग्रंथों में आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ विशेष उपयोगी और अनुपम ग्रंथ है।

इस ग्रंथ और ग्रंथकर्ता का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है:—

ग्रंथ-परिचय

श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ विक्रम की १६वीं शताब्दी के प्रथम पाद की रचना है। इसकी भाषा ढूँढ़ारी है जो अत्यंत सरल, रोचक व सुबोध है। इन ग्रंथ में मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूज जीवादि तत्त्व तथा देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का यथार्थ निरूपण किया गया है। इसमें सूक्ष्म तत्त्वचर्चाओं को भी बड़ा सरल बनाने का प्रयास किया है। जिस विषय को उठाया है, उस पर खूब ऊहापोह किया है और उस विषय के प्रत्येक पहलू पर विचार किया है, साथ ही शंका-समाधान के द्वारा विषय का स्पष्टीकरण भी किया है, जिससे वस्तु का यथार्थ स्वरूप सहज ही समझ में आ जाता है। यह ग्रंथ, प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों के महान ग्रंथों का रहस्य खोलने की अनुपम कुंजी है, धर्म-पिपासुओं के लिये अमृत है, जिसे पीते जाने पर भी तृप्ति नहीं होती। इस ग्रंथ की रहस्यपूर्ण गंभीरता और उत्तम धर्मबद्ध विषयरचना को देखकर बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि भी आश्चर्यचकित हो जाती है। इस ग्रंथ को निष्पक्ष दृष्टि से अवलोकन करने पर अनुभव होता है कि यह कोई साधारण ग्रंथ नहीं है किंतु उच्च कोटि का ग्रंथराज है।

इस ग्रंथ में नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में ग्रंथ की भूमिका, मंगलाचरण का प्रयोजन,

पंचपरमेष्ठी का स्वरूप, अंगश्रुत की परंपरा व ग्रंथ की प्रामाणिकता आदि का वर्णन है। दूसरे अध्याय में सांसारिक अवस्था का निरूपण है। तीसरे अध्याय में दु:ख के मूल कारण मिथ्यात्व, विषयाभिलाषा-जनित दु:ख, मोही जीव के दु:ख-निवृत्ति के उपायों का झूठापना और दु:ख-निवृत्ति का सच्चा उपाया बताया है। चौथे अध्याय में दु:ख का मूल कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र का वर्णन, प्रयोजनभूत, अप्रयोजनभूत पदार्थों की समझा, और इनमें गलत समझने से होनेवाली राग-द्वेष की प्रवृत्ति का स्वरूप बतलाया है। पाँचवें अध्याय में आगम और युक्ति के आधार से विविध मतों की समीक्षा करते हुये गृहीत मिथ्यात्व का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है। साथ ही अन्यमत के प्राचीन ग्रंथों के उदाहरण द्वारा जैनधर्म की प्राचीनता और महत्ता को पुष्ट किया है। छट्ठे अध्याय में गृहीत मिथ्यात्व के निमित्तकारण कुगुरु-कुदेव और कुधर्म का स्वरूप और उनकी सेवा से होनेवाली हानि को बतलाया है।

सातवें अध्याय में जैन मिथ्यादृष्टि का विस्तृत वर्णन है। एकांत निश्चयावलंबी जैनाभास, एकांत व्यवहारालंबी जैनाभास, उभयनयावलंबी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है। जिसके पढ़ते ही जैनदृष्टि का सत्यस्वरूप सामने आ जाता है और उनकी विपरीत मान्यता, जो व्यवहार व निश्चयनयों का ठीक अर्थ न समझने के कारण हुई थी, वह दूर हो जाती है। आठवें अध्याय में चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग व द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग) के शास्त्रों की कथनशैली, उनका स्वरूप प्रयोजन और शास्त्रों में दोषकल्पनाओं का समाधान दिया गया है। नववें अध्याय में मोक्षमार्ग के स्वरूप का निर्देश, सम्यक् पुरुषार्थ से ही मोक्षप्राप्ति का नियम, सम्यग्दर्शन के लक्षणों में विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थश्रद्धान को मुख्य सिद्ध कर उस श्रद्धान में चारों लक्षणों की व्याप्ति बताई है। किंतु खेद है कि मोक्ष के कारणरूप रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन का स्वरूप भी पूरा नहीं लिखा जा सका, हमारे दुर्भाग्य से 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ अपूर्ण रह गया। यदि ग्रंथ पूरा हो जाता तो वह अद्वितीय होता, फिर भी जितना लिखा जा सका है, वह अपने आपमें परिपूर्ण और मौलिक कृति के रूप में जगत का कल्याण कर रहा है। इस ग्रंथ के अध्ययन से कितने जीवों का भला हुआ है तथा कितने लोगों की दिगंबर जैनधर्म पर दृढ़ श्रद्धा हुई है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इसी कारण इस ग्रंथ ने जैन समाज में ऐसा स्थान बना लिया है कि इसका नाम सुनते ही इस ग्रंथ के प्रति श्रद्धा

उमड़ आती है। इस ग्रंथ की उपयोगिता व लोकप्रियता का प्रमाण है कि इसका अनुवाद आधुनिक-हिन्दी, मराठी व गुजराती भाषाओं में भी हो चुका है तथा इसकी अब तक 42000 प्रतियाँ मुद्रित हो चुकी हैं। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ भी उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों के प्राय: सभी मंदिरों में हैं, जिनकी संख्या हजारों में है।

ग्रंथकार का परिचय

श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ के रचयिता पंडित टोडरमलजी का जन्म लगभग दो सौ वर्ष पूर्व वि० सं० 1787 के लगभग जयपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जोगीदास और माता का नाम रम्भाबाई था। आप खंडेलवाल दिगंबर जैन गोदीका गोत्रज थे। पंडितजी की स्मरण शक्ति विलक्षण थी। आपने 10-11 वर्ष की आयु में ही न्याय, व्याकरण एवं गणित जैसे कठिन विषयों का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपके गुरु का नाम वंशीधर था। आपकी मृत्यु 37-38वर्ष की अल्पायु में सामाजिक विद्वेष के कारण हुई थी। पंडितजी अबाधित न्यायवेत्ता एवं सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वों को ही सत्य माननेवाले दृढ़ श्रद्धानी थे। पंडितजी की बहुज्ञता अद्वितीय थी। आप स्वयं 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिखते हैं—

'टीका सहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धियुपाय, आत्मानुशासन आदि शास्त्र, अर श्रावक मुनि के निरूपक अनेक शास्त्र, अरु सुष्ठ कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं, तिन विषैं हमारे बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्ते है।'

इससे ज्ञात होता है कि पंडितजी ने सिद्धांत व आध्यात्मिक रूप चारों अनुयोगों के ग्रंथों का अध्ययन करके आगमोक्त उपयोगी सर्व रहस्य का अनुगम किया। जिसके फलस्वरूप गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि महान ग्रंथों की टीका की और जिनवाणी का संपूर्ण सार लेकर अति सुगम शैली द्वारा इस ग्रंथ 'मोक्षमार्गप्रकाशक' की रचना कर जीवों को अमूल्य आत्मनिधि का ज्ञान कराया। यदि यह ग्रंथ आज न होता तो हमें जिनागम के गूढ़ रहस्य तथा प्रयोजनभूत तत्त्व स्पष्टता से समझने में न आते। इसी कारण पंडित टोडरमलजी को आचार्यकल्प के नाम से स्मरण किया जाता है।

अंत में तत्त्व-जिज्ञासुओं व आत्मकल्याण के इच्छुकों से निवेदन है कि वे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का नियमितरूप से स्वाध्याय करके सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वों का यथार्थ निर्णय कर व अपनी आत्मा में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करके अनादिकालीन मिथ्यात्व का नाश करें। स्वयं पंडितजी ने भी इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय के अंत में स्वाध्याय की महत्ता बताई है—

'बहुरि प्रवचनसार विषै भी मोक्षमार्ग का अधिकार किया, तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कहा है, सो इस जीव का तो मुख्य कर्तव्य आगमज्ञान है, याको होतैं तत्त्वनिका श्रद्धान ही है, तत्त्वनिका श्रद्धान भए संयम भाव ही है और तिस आगम तै आतमज्ञान की भी प्राप्ति हो है। तब सहज ही मोक्ष की प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म के अनेक अंग हैं, तिन विषैं एक ध्यान विना यातैं ऊंचा और धर्म का अंग नाहीं है, तातैं जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रंथ (मोक्षमार्गप्रकाशक) का तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादि का भी साधन न चाहिये, तातैं अवश्य याका अभ्यास विषैं प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा।'

पंडित प्रवर श्री दौलतरामजी भी छहढाला में तत्त्व-अभ्यास करने की प्रेरणा करते हैं-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन, इह परमामृत जन्म जरा मृति रोग निवारण;
तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजै, संशय विभ्रम मोह त्याग आपौ लख लीजै;
यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवौ जिनवानी, इह विधि गये न मिले सुमनि ज्यों उदधि समानी॥

भगवान पारसनाथ

लेखांक ८: अंतिम] [गतांक से आगे

भगवान पारसनाथ का जीवनचारित्र इस अंक से पूर्ण होने जा रहा है। बाल-वृद्ध-युवा सभी को यह पवित्र जीवनचरित्र खूब पसंद आया। पूर्व के दसवें भव में तथा मरुभूति के अवतार में कमठ के जीव ने क्रोधपूर्वक उपसर्ग किये थे; मरुभूति (पारसनाथ) के जीवन ने क्षमाभावपूर्वक उनको सहन किया था। क्रोध तथा क्षमा का दोनों जीवों ने कैसा फल प्राप्त किया, यह हमने देखा। अब अंतिम अवतार में पारस प्रभु दीक्षा लेकर मुनिदशा में ध्यानमग्न हैं और कमठ का जीव संवर नामक देव हुआ है; वह देव विमान में बैठकर विचरण करने निकलता है। पश्चात् क्या हुआ इसका वर्णन पढ़िये।

***

कमठ द्वारा अंतिम उपसर्ग। क्षमा की महान विजय। कमठ के जीव को धर्म की प्राप्ति।

आकाश में संवरदेव का विमान जा रहा था, किंतु जहाँ पारस मुनिराज ध्यान में खड़े थे उनके ऊपर जब आया तो वह विमान एकाएक रुक गया। अहा, नीचे पारसनाथ जैसे मुनिराज विराजमान हों, तब उन्हें वंदन किये बिना उनके ऊपर से विमान किसप्रकार जा सकता है? विमान के अंदर बैठे हुए देव का प्रयास विमान चलने में असफल रहा। तब विमान क्यों रुक गया, इसका पता लगाने के लिये संवरदेव विमान से बाहर आया।

संवरदेव ने विमान से बाहर निकलकर देखा तो पारस मुनिराज ध्यान में खड़े हैं? बस, उनको देखते ही देव क्रोधायमान हो गया और निर्णय किया कि इन्हीं ने मेरे विमान को रोका है। उसने तो भयंकर विकराल रूप धारण किया और भगवान के सामने खड़ा होकर कहने लगा—मानो भगवान को अभी निगल जायेगा, इसप्रकार अत्यंत क्रोधाविष्ट होकर विकराल मुँह फाड़कर कहने लगा कि—अरे मायचारी! तूने मंत्र से मेरे विमान को क्यों रोका? शीघ्र मेरे

विमान को छोड़, अन्यथा जलाकर भस्म कर दूँगा।—ऐसा कहकर मुँह से अग्नि की ज्वालाएँ निकालने लगा।

किंतु उत्तर कौन दे? भगवान तो अपने ध्यान में लीन हैं; वे न तो बोलते हैं, न हिलते-डुलते हैं, उनका तो रोम भी नहीं हिला। (अरे कमठ! अरे संवर! अपने क्रोध से ही तू जल रहा है; तेरा क्रोध भगवान को नहीं जला सकता!) कमठ द्वारा फेंकी जानेवाली अग्नि-ज्वालाएँ प्रभु से दूर ही रहती थीं; भगवान तो अपने उपशमरस में तल्लीन थे।

अग्नि की ज्वाला से भी जब भगवान को कुछ नहीं हुआ, तब संवरदेव यह देखकर अधिक चिढ़ गया, एवं पहाड़ के समान विशालकाय पत्थरों को उठा-उठाकर भगवान के ऊपर फेंकने लगा। धड़ाधड़ पत्थरों की वर्षा होने लगी... पृथ्वी कंपायमान हो गई... अच्छे-अच्छे वीर काँप उठे एवं धरणेन्द्र का आसन भी डोल उठा, किंतु भगवान तो अकंप आत्मध्यान में लीन थे... पत्थरों की वर्षा हो, ऐसी विक्रिया संवरदेव ने की, तथापि भगवान ने तो आँख उठाकर भी नहीं देखा और उन्हें पत्थर का एक टुकड़ा भी नहीं लगा,—ऐसा ही उनका अतिशय था। तीर्थंकर के शरीर पर कोई सीधा उपसर्ग नहीं कर सकता।

बाहर संवरदेव बड़ी-बड़ी शिलाएँ उठाकर फेंक रहा था, किंतु वे पत्थर तो प्रभु से दूर ही रहते थे; और उस समय भी प्रभु तो अंतर में ध्यान के द्वारा कर्म-पर्वत के टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे।

पत्थर की वर्षा से प्रभु चलायमान नहीं हुए, तब संवरदेव ने मूसलधार पानी की वर्षा प्रारंभ कर दी, मानो संपूर्ण पृथ्वी डूब जायेगी—इसप्रकार समुद्र के समान पानी उछालने लगा। वन में चारों ओर हाहाकार होने लगा; पशु भयभीत होकर प्रभु की शरण में आकर बैठ गये। संवरदेव पारस मुनिराज ऊपर घोर उपसर्ग कर रहा है।—किंतु प्रभु के ऊपर होनेवाले उपसर्ग को प्रकृति सहन नहीं कर सकी और धरणेन्द्र का आसन डोल उठा। 'अरे! यह इन्द्रासन क्यों काँप रहा है!'—अवधिज्ञान से ज्ञात हुआ कि हमारे परम उपकारी पारस मुनिराज के ऊपर संवरदेव घोर उपसर्ग कर रहा है... तुरंत ही धरणेन्द्र तथा पद्मावती वहाँ आकर उपसर्ग को दूर करने के लिये तैयार हुए।

एक ओर संवरदेव द्वेषवश उपसर्ग कर रहा है, तो दूसरी ओर धरणेन्द्रदेव तथा

पद्मावतीदेवी भक्तिराग से प्रभु की सेवा कर रहे हैं—प्रभु तो राग-द्वेष दोनों से परे चैतन्य साधना में ही तत्पर हैं। उनको नहीं है संवर के प्रति द्वेष तथा नहीं है धरणेन्द्र के प्रति राग; बाहर क्या हो रहा है, उस ओर प्रभु का लक्ष भी नहीं है। बाह्य में पानी की मूसलधार वर्षा हो रही है तो प्रभु के अंतर में चैतन्य के आनंद का सागर उछल रहा है।

प्रिय पाठको! भगवान के ऊपर ऐसा घोर उपसर्ग देखकर तुम कदाचित् उस कमठ के जीव पर क्रोध करने लग जाओगे—किंतु शांत! तुम उस पर क्रोध मत करना। वह जीव भी (संवरदेव) अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करके धर्मात्मा बननेवाला है। जिन पारसनाथ के ऊपर वह उपसर्ग कर रहा है, उन्हीं पारसनाथ की शरण में आत्मा का अनुभव करके वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा; तब तुमको उसके प्रति वात्सल्यभाव जागृत होगा कि वाह, धन्य है इस आत्मा को, जिसने क्षण में परिणामों को बदलकर आत्मा का अनुभव प्राप्त किया! परिणाम क्षण में परिवर्तित किये जा सकते हैं। क्रोध, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं है जो कि नित्य रह सके! क्रोध से भिन्न पारसनाथ ने इस कमठ के जीव संवरदेव पर क्रोध नहीं किया था;—यदि क्रोध किया होता तो वे केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते। इस प्रसंग पर पारसप्रभु मौन रहकर ऐसा उपदेश देते हैं कि हे जीवों! उपसर्ग करनेवाले के प्रति भी तुम क्रोध मत करना... तुम शांतभाव से अपनी आत्मसाधना में अचल रहना।

बहु उपसर्ग कर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं;
वंदे चक्री तथापि न मळे मान जो;
देह जाय पण माया थाय न रोममां,
लोभ नहीं छो प्रबल सिद्धि निदान जो।

—ऐसी अपूर्व मुनिदशा में प्रभु वर्त रहे हैं। धन्य है उनकी वीतरागता! धन्य है उनकी साधना!

एक ओर संवरदेव, मानो प्रभु को पानी में डुबा दूँ—ऐसी मूसलाधार वर्षा कर रहा है; तो दूसरी ओर धरणेन्द्र तथा पद्मावती अत्यंत भक्तिपूर्वक पानी में कमल की रचना करके प्रभु को पानी से अस्पर्श रखे हुए हैं; एवं सिर के ऊपर विशाल फण के द्वारा छत्र की रचना कर दी है; अंतर में परभावों से लिप्त रहनेवाले भगवान पानी से भी अलिप्त ही हैं।

अहा! भगवान तो आत्मसाधना से चलित नहीं हुए।—सात-सात दिन तक उपसर्ग करके अंत में संवरदेव थक गया और निरुपाय होकर भयंकर गर्जना के साथ बिजली का कड़ाका किया। बाह्य में बिजली की चमक के साथ ही प्रभु के अंतर में केवलज्ञान की दिव्य बिजली तीन लोक को प्रकाशित करती हुई चमक उठी। एकाएक सभी उपसर्ग अदृश्य हो गये एवं सर्वत्र आनंद-आनंद छा गया।—वह मंगल दिन था चैत्र कृष्णा चतुर्दशी।

धरणेन्द्र और पद्मावती जिस उपसर्ग को दूर करने का प्रयत्न कर रहे थे, वह कार्य केवलज्ञान के प्रताप से अपने आप पूर्ण हो गया। प्रभु उपसर्ग-विजेता होकर केवली बने; केवली को उपसर्ग नहीं होता। उपसर्ग पूर्ण हुआ, इसलिये धरणेन्द्र-पद्मावती का कार्य भी पूर्ण हो गया; भगवान के केवलज्ञान का ऐसा दिव्य अतिशय देखकर पारसनाथ प्रभु की स्तुति करने लगे। अहो प्रभो! आपके केवलज्ञान की कोई अद्भुत महिमा है। हे देव! आप स्वयं समर्थ हैं, हम आपकी रक्षा करनेवाले होते कौन हैं? प्रभो! आपके प्रताप से हमने धर्म प्राप्त किया है, आपने संसार के घोर दुःखों से हमारी रक्षा की है। इसप्रकार स्तुति की। केवलज्ञान हो जाने से इन्द्रों ने भी आकर भगवान की पूजा की, एवं आश्चर्यकारी दिव्य समवसरण की रचना की। प्रभु का उपदेश श्रवण करने के लिये अनेक जीव समवसरण में आने लगे।

इसप्रकार सभी आश्चर्यकारक घटनाओं को देखकर संवरदेव के भावों में परिवर्तन हो गया, केवली प्रभु की दिव्य महिमा को देखकर उसे भी श्रद्धा उत्पन्न हुई; उसका क्रोध न जाने कहाँ गायब हो गया; पश्चात्तापपूर्वक वह बारंबार प्रभु से अपने किये हुए अपराधों की क्षमा माँगता हुआ स्तुति करने लगा।

हे प्रभु! मैंने अकारण इतना उपसर्ग किया, फिर भी आपने किंचित क्रोध नहीं किया। कहाँ आपकी महानता और कहाँ मेरी पामरता। स्वर्ग के राजा इन्द्र भी आपकी भक्ति सहित सेवा करते हैं। इतने समर्थ होने पर भी आपने मुझ पर किंचित् क्रोध नहीं करते हुए क्षमा धारण की। धन्य आपकी वीतरागता! इस वीतरागता के द्वारा केवलज्ञान की साधना करके आप परमात्मा हो गये। प्रभो! मेरे अपराध क्षमा करो। अज्ञान से उपसर्ग किये, इसलिये मैं ही दुःखी हुआ, एवं नरकादि के घोर दुःख भोगे। प्रभो! अंत में क्रोध पर क्षमा की विजय हुई। अब क्षमा धर्म की महिमा को मैंने पहिचाना है। मेरा आत्मा उपयोगस्वरूप है, वह क्रोध से भिन्न है—ऐसा

आपके प्रताप से मेरी समझ में आया है।

भगवान ने समवसरण में जो उपदेश दिया, उसे सुनकर संवरदेव ने (कमठ के जीव ने) भेदज्ञान करके विशुद्ध सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया; पार्श्वप्रभु के प्रताप से वह जीव पापी मिटकर मोक्ष का साधक हो गया। धरणेन्द्र तथा पद्मावती ने भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया; इतना ही नहीं, महिपाल-तापस के साथ जो सात सौ कुलिंगी तापस थे, वे भी असत्य मार्ग का त्याग करके धर्म के सच्चे स्वरूप को समझे, तथा भगवान के चरणों में सम्यग्दर्शन सहित उन सभी ने संयम धारण किया। कुगुरुपना छोड़कर वे सच्चे जैन-गुरु हुए। अन्य कितने ही जीवों ने भगवान के उपदेश से सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

देखो, महापुरुषा की महिमा! अनेक भव तक पार्श्वप्रभु का संग किया तो कमठ का उद्धार हो गया। शास्त्रकार कहते हैं कि—महापुरुषों के साथ मित्रता की तो क्या बात, किंतु शत्रुतापूर्वक उनका संग अंत में तो हित का ही कारण होता है।

कमठ का जीव धर्म प्राप्त करके भगवान की भक्ति करने लगा, यह देखकर लौकिकजन आश्चर्य से कहने लगे—वाह! देखो जिनप्रभु की महिमा! कमठ को भी अंत में प्रभु की ही शरण में आना पड़ा। 'पारस' के संग से पापी भी परमात्मा हो जाया करते हैं।

जिसप्रकार मच्छ उछल-उछलकर समुद्र के पानी को पीड़ा पहुँचाता है, तथापि वह मच्छ समुद्र के आश्रय से ही जीवित है, इसीप्रकार कमठ के क्षुद्र जीव ने द्वेषबुद्धि से अनेक भव तक पीड़ा पहुँचाई, किंतु अंत में तो प्रभु की शरण में ही आकर धर्म को प्राप्त किया। प्रभु के आश्रय बिना वह कहाँ से सुखी हो सकता था? अहो, प्रभु का ज्ञान, प्रभु की शांति, प्रभु की वीतरागी क्षमा, उनकी क्या बात! प्रभु की गंभीरता समुद्र से भी महान है। हे पारस जिनेन्द्र! सभी तीर्थंकर समान होते हुए भी आपकी जो विशेष प्रसिद्धि देखने में आती है, वह तो केवल कमठ के कारण ही देखने में आती है।—ठीक है, क्योंकि अपकार करनेवाले शत्रुओं के द्वारा ही महापुरुषों की कीर्ति फैलती है! प्रभो! संवरदेव की भयंकर विक्रिया के समय भी आप न तो अपनी शांति से चलायमान हुए और न कमठ के ऊपर ही क्रोध किया। आपने तो शांतचित्त के द्वारा ही कमठ की विक्रिया को दूर करके जगत को यह बतला दिया कि सच्ची विजय क्रोध के द्वारा नहीं किंतु क्षमा के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। कमठ के दुष्टभावों के कारण उसको स्वयं

ही हानि हुई, आपकी आत्मसाधना में कमठ के दुष्टभाव किंचित् बाधाकारक नहीं हुए। वास्तव में आपकी शांति आश्चर्यजनक है। हे प्रभो! यह धरणेनद्र तथा पद्मावती दोनों जीव महान कृतज्ञ हैं, उपकार को पहिचाननेवाले हैं, धर्मात्मा हैं—इसप्रकार जगत में उनकी प्रशंसा हो रही है, किंतु हमको इस बात की खोज करनी पड़ेगी कि आपका उपसर्ग किसप्रकार दूर हुआ?—क्या धरणेन्द्र ने आपके उपसर्ग को दूर किया अथवा आपके केवलज्ञान के प्रताप से स्वयमेव वह दूर हो गया? प्रभो! सच्चा प्रताप तो आपका ही है। वास्तविक पूज्य तो आप ही हैं; धरणेन्द्र तथा पद्मावती तो हमारे समान ही आपके सेवक हैं। आपके प्रताप से ही उन्होंने धर्म को प्राप्त किया है—इसप्रकार भक्तजन अनेक प्रकार से प्रभु की महिमा करते हुए, दिव्य उपदेश का श्रवण कर रहे थे।

अहा, समवसरण में विराजमान तीर्थंकर भगवान की शोभा अद्भुत थी! समवसरण में दिव्य सिंहासन होते हुए भी भगवान उसको स्पर्श किये बिना आकाश (अंतरिक्ष) विराजमान थे। सिंहासन से भी ऊँचे आकाश में विराजमान निरालंबी भगवान को देखते हुए ऐसा ज्ञात होता था कि पुण्य के उत्कृष्ट फल से भी चैतन्यगुण ऊँचे हैं; वह सिंहासन से अस्पर्शित भगवान जगत को यह प्रसिद्ध कर रहे थे कि पुण्यफलरूप यह सिंहासन आत्मा के लिये अपद है-अपद है। रत्नजड़ित सिंहासन होते हुए भी भगवान तो उससे अलिप्त थे; उनको सिंहासन का आधार नहीं था, किंतु उससे विपरीत सिंहासन की शोभा भगवान के प्रताप से थी। इसीप्रकार बाहर में स्फटिक के तीन छत्र भले ही शोभित हों किंतु अंतर में प्रभु के रत्नत्रय की शोभा कोई अलग ही थी। देवों की दुंदुभी के नाद से भी प्रभु की दिव्यध्वनि अधिक मधुर थी। प्रभु के मुख का प्रभा-मंडल भले ही सूर्य-चंद्र की अपेक्षा अधिक शोभित हो, किंतु उनके केवलज्ञान की चैतन्यप्रभा के तेज को तो सम्यग्दृष्टि ही जानते थे।

भगवान के समवसरण में कल्पवृक्ष थे। दस प्रकार के भोगों की सामग्री देनेवाले उत्तम कल्पवृक्षों को देखकर मुमुक्षु को ऐसा होता था कि अरे! यह कल्पवृक्ष तो बाह्य फल देनेवाले हैं, किंतु सर्वज्ञदेव तो ऐसे कल्पवृक्ष हैं कि जिसकी सेवा से सम्यग्दर्शनादि चैतन्य-रत्न प्राप्त होते हैं। इसलिये मुमुक्षु दस प्रकार के कल्पवृक्षों का दूर से ही त्याग करके, केवलज्ञानरूपी अजोड़ कल्पवृक्ष के समीप दौड़कर पहुँच जाते थे, एवं अपूर्व सम्यक्त्वादि रत्नत्रय को प्राप्त

कर लेते थे। अहा, प्रभु के गुणों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? वह वचनगोचर नहीं, वह ज्ञानियों को अनुभवगम्य है।

भगवान का उपदेश अद्भुत था! वे आत्मा की परम महिमा को समझाते हुए उसकी आराधना का उपदेश देते थे। भगवान ने उपदेश में क्या कहा ? वह संक्षेप में यहाँ देखिये—

❀ जगत में जाननेयोग्य तत्त्व कौन से हैं ?

जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा-मोक्ष, इन नौ तत्त्वों की पहिचान करना चाहिये।

❀ नौ तत्त्वों में से कौन से तत्त्वों का ग्रहण करना व कौन से तत्त्वों का त्याग करना चाहिये ?

शुद्ध जीव को ग्रहण करना, संवर-निर्जरा-मोक्ष को ग्रहण करना; अन्य सभी तत्त्वों का त्याग करना। जीव सदा अपनी चेतना से जीवित है।

❀ जीव को मोक्षसुख की प्राप्ति किसप्रकार होती है ?

❀ आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

❀ जीव को पाप से नरक, पुण्य से स्वर्ग, तथा रत्नत्रयरूप वीतराग धर्म से मोक्ष प्राप्त होता है।

— ऐसे मोक्षमार्ग का उपदेश भगवान ने दिया। जिस मार्ग से स्वयं ने मोक्ष प्राप्त किया, वही वीतरागमार्ग भगवान ने जगत को बतलाया है। अनके जीवों ने ऐसे मार्ग को समझकर धर्म प्राप्त किया; कितने ही जीव दीक्षा लेकर मुनि हुए; सिंह-बाघ-हाथी-बंदर-सर्प इत्यादि पशु भी आत्मा को समझकर व्रतधारी हुए। इसप्रकार चारों तरफ धर्म का जयजयकार होने लगा।

भगवान के धर्म-दरबार में स्वयंभूस्वामी इत्यादि 10 गणधर, 350 श्रुतकेवली, 10900 उपाध्याय, 1400 अवधिज्ञानी, 750 मनःपर्यय ज्ञानी, 1000 केवलज्ञानी, 1000 ऋद्धिधारी मुनि, 600 मुनि वाद-विवाद में पारंगत थे; कुल 16000 मुनिवर थे; तथा 36000 अर्जिकाओं में सुलोचना नाम की आर्जिका प्रमुख थी। श्रावक एक लाख तथा श्राविकाएँ तीन लाख थीं। स्वर्ग के देव तथा वन के पशु भी प्रभु की दिव्यवाणी श्रवण करने आते थे एवं धर्म प्राप्त करके

आत्मा का उद्धार करते थे।

श्री पारसनाथ भगवान 70 वर्ष तक देश-देशांतर में विहार करते हुए अंत में सम्मेदशिखर पर्वत के ऊपर पधारे।

अब उनके मोक्ष जाने में एक मास शेष रहा, इसलिये उनकी वाणी तथा विहार इत्यादि क्रियाएँ रुक गईं। सम्मेदशिखर की सबसे ऊँची टूंक पर प्रभु खड़े थे; तीसरा तथा चौथा शुक्लध्यान पूर्ण करके अयोगी भगवान दूसरे ही क्षण ऊर्ध्वगमन करके मोक्ष पधार गये... शरीर का त्याग करके अशरीरी हो गये... संसारदशा का त्याग करके महाआनंदरूप सिद्धदशारूप परिणमित हो गये। भगवान श्रावण शुक्ला सप्तमी को मोक्ष पधारे थे, इसलिये वह 'मोक्ष सप्तमी' कहलाती है। पारसनाथ भगवान मोक्ष पधारे, इसलिये इस पर्वत का नाम भी 'पारसनाथ-हिल' कहलाने लगा। वहाँ के रेलवे स्टेशन भी 'पारसनाथ' के नाम से प्रसिद्ध है। पर्वत की जिस टूंक से भगवान मोक्ष पधारे, वह पत्थर की टूंक थी 'पारस' के स्पर्श से 'सुवर्ण' की हो गई, इसलिये उसका नाम 'सुवर्णभद्र' कहलाने लगा। वीर संवत 2483 एवं 2493 में कहानगुरु के साथ हजारों यात्रियों ने इस सिद्धिधाम की यात्रा की है।

क्षमामूर्ति हे देव जिनेश्वर, शिखर सिद्धिधाम है;
सम्मेदशिखर के सुवर्णभद्र पर सिद्धालय में वास है।
निजस्वरूप को साधा आपने, चैतन्यरस भरपूर है;
प्रभु प्रताप से आतम साधी, हरषे 'हरि' गुण गाय रे।
गुण तुम्हारा देख प्रभुजी, मन मेरा ललचाय रे;
पारसप्रभु तुझ चरण कमल में वंदन बारंबार रे॥

*** श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय! ***

संत मोक्षमार्ग में बुलाते हैं

स्वानुभवपूर्वक अंतर में निजपद की साधना करनेवाले धर्मात्मा दूसरे जीवों को भी शुद्ध चैतन्यपद बतलाकर मोक्षमार्ग में बुलाते हैं कि अरे जीवो! आनंदमय निजपद की साधना करने के लिये तुम भी इस मार्ग पर आओ!

अपने चैतन्य को जो नहीं देखते, अनुभव नहीं करते एवं रागादि निजपद को अपना मान रहे हैं, वे जीव अंधे हैं। जो जीव अपने स्वरूप को नहीं देखते–ऐसे जीवों को जागृत करके आचार्यदेव उन्हें शुभपद दिखाते हैं।

हे प्राणियो! रागादि अशुभभावों को ही निजरूप मानकर तुम उनका वेदन कर रहे हो, उन्हीं के समान अपने को मान रहे हो—तथापि वह भूल है, जीव का स्वरूप वैसा नहीं है, जीव तो शुद्ध चैतन्यमय है, उसे भूलकर रागादि पर्यायों के समान स्वयं को अनुभव करता है। राग में तो आकुलता है। उस मार्ग पर न जाओ, तुम्हारा वह मार्ग नहीं, तुम तो चैतन्यमय हो, इसलिये इस मार्ग की ओर आओ—इस मार्ग पर आओ। शुद्ध चैतन्यपद की ओर उन्मुख होओ... उसका अनुभव करो... यही तुम्हारा मार्ग है; ऐसे चैतन्यपद में ही तुम्हारा आनंद है; उसे छोड़कर अन्यत्र न जाओ तथा दूसरे का अनुभव न करो।

जिसमें से चैतन्य के आनंद की परिणति प्रगट हो, उस चैतन्यपद का अनुभव नहीं करता और रागादि को निजपद मानकर उसी के अनुभव में रुक जाता है, वह तो परभाव की मायाजाल में फँसा हुआ है, अपने निजपद को भूला हुआ है और चार गति के भव–भ्रमण में सोया हुआ है। जिस जिस भव में जिस पर्याय को धारण करता है, उसी पर्याय के अनुभव में मग्न है। मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं रागी हूँ; ऐसा अनुभव करता है। परन्तु उससे भिन्न अपने शुद्ध ज्ञायकपद का अनुभव नहीं करता, वह अंधा है। वह विनाशी भावरूप ही अपना अनुभव करता है परन्तु अविनाशी निजपद को नहीं देखता। वह निजपद का मार्ग भूलकर विपरीत मार्ग पर पहुँच गया है। संत उसे बुलाते हैं कि अरे जीव, रुक जा! विभाव के मार्ग से वापिस आ... वह

सुख का मार्ग नहीं, वह तो मायाजाल में फँसने का मार्ग है। इसलिये उस मार्ग की ओर न जा... इस ओर आ... तेरा आनंदमय सुखधाम यहाँ पर है, अतः इस ओर आ। देव, मनुष्य, रागी तू नहीं है, तू तो शुद्ध चैतन्यमय है तथा तेरा अनुभव भी चैतन्यमय है। चैतन्य से पृथक् कोई तेरा पद नहीं... वह तो अपद है.. अपद है।

अरे, ऐसा चैतन्यपद देखकर उसकी साधना के लिये आठ-आठ वर्ष के राजकुमार तो राजपाट छोड़कर वन में चले गये, अनुभवगम्य चैतन्यपद में लीन होने के लिये वीतरागमार्ग में लग गये। जिस चैतन्यपद के सन्मुख इन्द्रपद भी तुच्छ भासित होता है, उसके महिमा की क्या बात! अरे शुद्ध चैतन्यस्वरूप जैसा है, उसे वैसा तो देख। अमृत से भरे चैतन्य सरोवर को छोड़कर विष से भरे हुए समुद्र में मत जा, भाई, दुःखी होने के मार्ग पर मत जा...! उससे पीछे मुड़कर इस चैतन्य के मार्ग पर आ! बाह्य में तेरा मार्ग नहीं, परंतु अंतर में है। संत प्रेम से तुझे ऐसे मोक्ष के मार्ग में बुलाते हैं।

अहो ऐसे मार्ग पर कौन नहीं आयेगा? विभाव को छोड़कर स्वभाव में कौन नहीं आयेगा? बाह्य का राज्य-वैभव छोड़कर अंतर के चैतन्य-वैभव को साधने के लिये राजा और राजकुमार अंतरोन्मुख हुए। बाह्यभाव अनंतकाल तक किये, अब उन्हें छोड़कर, मेरा परिणमन अंदर के निजपद की ओर उन्मुख होता है तथा अब मैं परभाव के मार्ग में जानेवाला नहीं हूँ परंतु अंतर के चैतन्यपद में ही मैं रहूँगा। धर्मी जीव ऐसे स्वानुभवपूर्वक निजपद को साधते हैं... और दूसरे जीवों से भी कहते हैं कि हे जीवो! तुम भी इसी मार्ग पर आओ। अपने अंतर में देखा हुआ मोक्ष का मार्ग-आनंद का मार्ग बतलाकर संत बुलाते हैं कि हे जीवो! तुम भी हमारे साथ इस मार्ग पर आओ... इस मार्ग पर आओ। अविनाशी सिद्धपद का यही मार्ग है।

मोक्षार्थी को स्वाद लेनेयोग्य, अनुभव करनेयोग्य शुद्ध चैतन्यपद एक ही है। इसके अतिरिक्त अन्य सब अपद हैं, शुद्धजीव का वह स्वरूप नहीं है, मोक्ष अर्थात् परम सुख चाहते हो तो सदा शुद्धपद का ही अनुभव करो। क्या करना और कहाँ स्थिर होना? तो कहते हैं कि अपने शुद्ध चैतन्य पद में दृष्टि करना, उसी में मग्न रहना। शरीर या घर, वह तेरा पद नहीं है, तेरा निवास नहीं है। संयोग तेरा निवासस्थान नहीं है; राग तेरा निवासस्थान नहीं है; तेरा निवास तो असंख्यप्रदेशी चैतन्यरस से भरपूर है, वही तेरा निजपद है। उसका अनुभव लेना ही मोक्षसुख

अर्थात् चिरसुख का कारण है। चिर सुख अर्थात् दीर्घ सुख, शाश्वत सुख, मोक्षसुख।

आत्मा स्वयं सत्य अविनाशी वस्तु है, उसके अनुभव से हुआ सुख शाश्वत तथा अविनाशी है। आत्मा का आनंद स्व में है, पर में नहीं। जिसमें आनंद न हो, उसे निजपद कैसे कहा जाये? निजपद तो उसे कहते हैं कि जिसमें आनंद हो। जिसका स्वाद लेने से, जिसमें निवास करने से और जिसमें स्थिर होने से आत्मसुख का अनुभव हो, वही निजपद है। जिसके वेदन में आकुलता हो, वह निजपद नहीं, वह पर-पद है तथा आत्मा के लिये अपद है। उसे अपद जानकर उससे विमुख होकर शुद्ध आनंदमय चैतन्यपद की ओर उन्मुख होओ! संत बुलाते हैं कि इस ओर आओ—इस ओर आओ!

जिसमें कोई विकल्प नहीं, ऐसा यह निर्विकल्प चैतन्यपद ही आस्वादन करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में चैतन्य का स्वाद है; राग का स्वाद रत्नत्रय से बाहर है। निजपद में राग का स्वाद नहीं, राग तो दुःख और विपदामय है, परंतु चैतन्यपद में विपदा नहीं है। जिसमें आपदा है, वह अपद है, जिसमें आपदा का अभाव और सुख का सद्भाव है, वही स्वपद है, आनंदस्वरूप आत्मा की संपदा से जो विपरीत है, वह विपदा है। राग चैतन्य की संपदा नहीं, तथापि वह विपदा है और आत्मा का अपद है। जिसप्रकार राजा का स्थान कूड़े-कचरे का ढ़ेर नहीं होता; राजा तो सोने के सिंहासन पर ही शोभा देता है; उसीप्रकार इन जीवराजा का स्थान राग-द्वेष-क्रोधादि तथा मलिन भावों में नहीं है; वह तो अपने शुद्ध चैतन्य-सिंहासन पर ही शोभा देता है। राग में कहीं चैतन्यराजा का स्थान नहीं है, वह तो अपद है, अस्थिर है, मलिन है, विरुद्ध है; चैतन्यपद शाश्वत है, शुद्ध है, पवित्र है, अपने स्वभावरूप है। ऐसे शुद्धपद को हे जीवो! तुम जानो... उसे स्वानुभव-प्रत्यक्ष करो। ऐसी जिनपद की साधना ही मोक्ष का उपाय है।

अहा, निजानंद में निमग्न चैतन्यमय, शांतरस के प्रवाहरूप निजपद, यह आत्मा स्वयं है। बाह्य में देखने का रस छोड़कर स्वयं अपने चैतन्यपद को देखने से परम आनंद प्राप्त होता है। ऐसे आनंद के मार्ग पर संत बुलाते हैं।

[श्री समयसार कलश 138-139 के प्रवचन से]

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[श्री समयसार-नाटक के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचन] (लेखांक-4)

✱ सार में सार जो आत्मा का अनुभव उसका वर्णन इस समयसार में करेंगे। मुक्तिपंथ में कारणरूप ऐसा आत्मा का अनुभव कैसे हो, वही मुख्य बात इस समयसार में कहेंगे। शुद्ध निश्चय की कथनी कहेंगे और उसके साथ शुद्ध व्यवहाररूप जो वीतरागी दशा-मोक्षमार्ग वह भी कहेंगे।

✱ इस समयसार में अनुभव का वर्णन करना कहा; तो पूछते हैं कि अनुभव किसे कहना? उस अनुभव का लक्षण कहते हैं:—

वस्तु विचारत ध्यावतें मन पावे विश्राम;
इस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव याको नाम।

चिदानंदस्वरूप आत्मा का सच्चा स्वरूप लक्ष में लेकर उसे विचारने और ध्याने से चित्त विश्रांति पाता है; परभावों की आकुलता से छूटकर अतीन्द्रिय सुख होता है, उसका नाम अनुभव है।

✱ आत्मा का ऐसा अनुभव प्रगट करना, वह इस समयसार का तात्पर्य है; वही धर्म है, वही मोक्षमार्ग है। उस अनुभव की महिमा कहते हैं:—

अनुभव चिंतामणि-रतन, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्ष का अनुभव मोक्षस्वरूप।

अहा, अनुभव, वह तो अतीन्द्रिय आनंद को देनेवाला चिन्तामणि है; जड़ चिंतामणि तो बाह्य वस्तुएँ देता है, परंतु आत्मा के अनुभवरूप चिंतामणि तो मोक्ष प्रदान करता है। आत्मा के

अनुभव में मोक्ष के आनंद का अनुभव होता है। आत्मा का जो परम निराकुल शांतरस, उसका समुद्र स्वानुभव में उल्लसित होता है, इसलिये अनुभव को रसकूप कहा है। आत्मा के अनुभव में जो शांति है, वैसी शांति जगत में अन्यत्र कहीं नहीं है।

इस शास्त्र में बहुत वर्णन करेंगे, परंतु उसमें मूल प्रयोजन तो अनुभव का ही है—कि जिसमें आत्मा के आनंदरस का स्वाद आये। आत्मस्वभाव का अनुसरण करके भवने-परिणमने का नाम अनुभव है, ऐसा अनुभव ही मोक्ष का मार्ग है।

अनुभव अर्थात् आत्मा का आनंद। आत्मा का आनंद कहो या मोक्ष का आनंद कहो; इसलिये अनुभव को मोक्षस्वरूप कहा है।

अनुभवी को इतना ही करना है कि सदा निजानंद में रहे। अहो! जगत में सारभूत आत्मा ही है कि जिसके अनुभव में आनंद है; अन्यत्र कहीं आनंद नहीं है। आत्मा में आनंद है, इसलिये हे जीव! तू आत्मा में रुचि लगा।

पर से भिन्न जो चिदानंदस्वभाव, उसे जानकर उसके सन्मुख होने से जो विकल्पातीत आनंद का स्वाद आया, वह शुद्धात्मा का अनुभव है; मोक्षप्राप्ति के लिये वह अनुभव चिंतामणिरत्न के समान है; वह अनुभव स्वयं शांतरस से भरपूर कुआँ है; शांतरस का झरना आत्मा के अनुभव में बहता है। अनुभवदशा में चैतन्य के आनंद का समुद्र उल्लसित होता है;—उस आनंद की क्या बात! उस शांतरस की क्या बात! जिसमें ऐसा अनुभव है, वही मोक्षमार्ग है; रागादि कोई भाव मोक्षमार्ग नहीं हैं। मोक्षमार्ग का ऐसा अनुभव कहो या निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कहो; आत्मा के ऐसे अनुभव बिना मोक्ष का फाटक नहीं खुलता; मोक्ष का फाटक आत्मा के अनुभव द्वारा ही खुलता है और ऐसा अनुभव यह समयसार नाटक बतलाता है; इसलिये कहा है कि—**नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है।**

अनुभव में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि सबका समावेश हो जाता है और उस अनुभवरूप एक ही मोक्षमार्ग है; अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं है। मुक्ति के कारणरूप ऐसे अनुभव का अधिकार इस शास्त्र में है।

देखो तो सही, पंडित बनारसीदासजी ने आत्मानुभव की कितनी महिमा गायी है। अरे, यह तो आत्मा के अपने घर की बात है, परंतु जीव ने स्वयं अपनी महिमा को कभी जाना नहीं।

वह महिमा बतलाकर आत्मा का अनुभव कराते हैं। ऐसे अनुभव में क्या-क्या आता है, यह बतलाकर कहते हैं कि—अहो! आत्मानुभव के समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

जैसे रसायन अनेक प्रकार के होते हैं। एक रसायन ऐसा होता है, जिसे पत्थर पर छिड़कने से सोना बन जाता है। अज्ञानी जड़ रसायन की महिमा देखते हैं और ज्ञानी तो चैतन्य के अनुभवरूपी रसायन के निकट जड़ रसायन को धूल के समान देखते हैं।

जिसप्रकार पत्थर में से सोना बन जाता है, उसीप्रकार एक रसायन ऐसा भी होता है जिसके द्वारा सर्व प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं, परंतु उस रसायन से कहीं भवरोग नहीं मिटता। यह अनुभव रसायन ही ऐसा है, जिसके द्वारा तुरंत भवरोग का अंत होकर मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। अहो! ऐसे अनुभवरस का हे जीवों! तुम सेवन करो! आत्मा के अनुभव की, और ऐसे स्वानुभवी संतों की जितनी महिमा की जाये, उतनी कम है! स्वयं ऐसा अनुभव करना ही सार है।

ऐसे अनुभव की रीति इस समयसार में बतलायी है, इसलिये कहा है कि—

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है।'

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

अडोल साधक

जगत में प्रतिकूलता के पहाड़ टूटकर गिरते हों, अज्ञानी सत्यधर्म का विरोध करते हों, अन्याय होता हो, तथापि ज्ञान में विकल्प या आकुलता करने का स्वभाव नहीं; क्या सिद्ध भगवान आकुलता करते हैं? नहीं; प्रतिकूलता की आँधी में ऐसी शक्ति नहीं कि जो ज्ञान के पहाड़ को विचलित कर दे। ज्ञान का स्वभाव अनाकुलतारूप रहने का है। आत्मा ऐसे अपार वीतराग शांत स्वभाव से परिपूर्ण है। अहा, आत्मा का स्वभाव तो वीतरागी निर्मल कार्य का ही करनेवाला और आनंद का ही देनेवाला है।—ऐसी आत्मसाधना के पथ पर चलनेवाले साधक को जगत की कोई प्रतिकूलता चलायमान नहीं कर सकती या आकुलता उत्पन्न नहीं कर सकती।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

विपुलाचल पर वीरनाथ का उपदेश

भगवान महावीर की वाणी कहती है कि वाणी की ओर का विकल्प छोड़कर अपने चैतन्यतत्त्व का ध्यान कर!

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर को केवलज्ञान होने के पश्चात्, राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर गणधरों की उपस्थिति में उनकी सर्वप्रथम दिव्यध्वनि खिरी; उसे ग्रहण करके अनेक जीव भावश्रुतरूप परिणमित हुए और धर्म को प्राप्त किया। गणधरदेवों ने उस वाणी को ग्रहण करके उसकी बारह अंगरूप रचना की। उसका सार नियमसार, समयसार आदि परमागमों में भरा है।

नियमसार में 92वें कलश में वचनगुप्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अहो भव्य जीवो! समस्त वचनविलास से रहित ऐसे शुद्ध सहज चैतन्य से विलसित आत्मा का ही ध्यान करने जैसा है, जिसका ध्यान करने से अनंत आनंद का भंडार प्राप्त होता है।

आज जैनशासन का नूतन वर्ष है और दिव्यवाणी का मंगल-दिन है, उस वाणी में भगवान ने क्या कहा? वाणी की ओर का लक्ष छोड़ने को भगवान ने कहा है, वाणी के विकल्पों से रहित चैतन्यतत्त्व अंतर में है, उसके सन्मुख होकर उसका ध्यान करो... वाणी या विकल्प कहीं ध्येय नहीं हैं। ध्येय तो अंतर में चिदानंद तत्त्व है।

भाई, आनंद का भंडार तो तेरे अंतर में है, वाणी में कहीं तेरा आनंद नहीं है। भगवान की वाणी भी ऐसा कहती है कि तू अपनी ओर देख... हमारी ओर (वाणी या परभाव के सन्मुख) मत देख। मुक्ति का मार्ग तो अंतर में चैतन्यचमत्काररूप स्वतत्त्व का ध्यान करना ही है; तीर्थंकर भगवान के सन्मुख देखने में भी विकल्प है। आनंदरूप मोक्ष का मार्ग तो स्वद्रव्याश्रित-अपने में है। पर के आश्रय में मोक्षमार्ग नहीं है।

अरे जीव! तू जगत की ओर क्या देखता है! अंतर में चैतन्यभगवान अद्भुत वस्तु विराजमान है, उसी ओर देख! उसे देखते ही तुझे शांति और आनंद होगा। पर-सन्मुखता तो राग का भंडार है, आनंद का भंडार स्व-सन्मुखता में है। स्वतत्त्व का चिंतवन छोड़, परतत्त्व के विकल्पों में तो राग-द्वेष-अंधकार है। चैतन्यप्रकाश तो अपने स्वरूप के ध्यान में है। ऐसा

ध्यान होने पर वचन की ओर का विकल्प नहीं रहता; वचन की ओर की बाह्यवृत्ति ही नहीं रहती, इसलिये उसने वचन का त्याग किया—ऐसा कहा जाता है, और ऐसी वचनगुप्ति ही मुक्ति का कारण है।

बाह्य और अंतर के वचन-विकल्पों को छोड़कर उपयोग को परमात्मस्वरूप में जोड़ना वह योग-समाधि है। वही परमात्मस्वरूप को प्रकाशित करनेवाला दीपक है। विकल्पों में परमात्मस्वरूप प्रकाशित नहीं होता। अरे, जहाँ भगवान की वाणी की ओर से विकल्प को भी छोड़नेयोग्य कहा है, वहाँ अन्य प्रकार के विकल्पों की तो क्या बात! यदि बाह्य के आश्रय से धर्म मानकर बाह्य में ही देखता रहे तो अंतर में स्व की ओर कब देखेगा? और अपने स्वरूप में उपयोग लगाये बिना धर्म या समाधि-गुप्ति कहाँ से होगी? अतः जिनवाणी में ऐसा उपदेश है कि समस्त वचन-विकल्पों से रहित होकर अंतर में अपने सहज अतीन्द्रिय चैतन्यतत्त्व को ध्याओ!—यही मोक्ष का मार्ग है। भगवान महावीर ने विपुलाचल से यही उपदेश दिया है।

ज्ञानी कहीं भी आकर्षित नहीं होते

चैतन्यतत्त्व के आनंद का जिसने अनुभव किया है, ऐसे धर्मी जीव जगत के किसी भी पदार्थ की ओर आकर्षित नहीं होते, मोहित नहीं होते; क्योंकि चैतन्य के अतिरिक्त महिमावान पदार्थ जगत में नहीं है कि जो धर्मी को आकर्षित कर सके। चैतन्यस्वरूप की महत्ता के समक्ष जगत के सभी पदार्थ तुच्छ-नीरस हैं। जिसने चैतन्य के सुख का स्वाद नहीं लिया, वही बाह्यपदार्थों में सुख मानकर आकर्षित होता है।

सच्चा पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता

जीव अंतर के सच्चे अभ्यास द्वारा प्रयत्न करे तो उत्कृष्ट छह महीने में अवश्य आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन हो जाये—यह सुनकर एक व्यक्ति ने पूछा कि हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं परंतु सम्यग्दर्शन नहीं होता ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि अरे भाई ! ऐसा नहीं हो सकता है कि सम्यक्त्व के हेतु सच्चा पुरुषार्थ करे और सम्यक्त्व न हो। कारण के अनुसार कार्य होता ही है—ऐसी कारण-कार्य की संधि है। कार्य प्रगट नहीं होता तो ऐसा मान कि तेरे कारण में ही कहीं भूल है। तेरा पुरुषार्थ कहीं राग की रुचि में रुका है। यदि स्वभाव की ओर के पुरुषार्थ की धारा प्रारंभ हो तो अंतर्मुहूर्त में अवश्य निर्विकल्प अनुभव सहित सम्यग्दर्शन हो।

स्वभाव का प्रयत्न न करके राग का प्रयत्न करे और कहे कि हम बहुत प्रयत्न करते हैं, तथापि सम्यक्त्व नहीं होता, तो उसे कारण-कार्य के मेल की खबर नहीं है। कारण दे राग का और कार्य माँगे वीतराग स्वभाव का-तो कहाँ से मिलेगा ? प्रयत्न करे पराश्रय का और कार्य चाहे स्वाश्रय स्वभाव का, यह कैसे बने ? भाई, यदि तू सम्यक्त्व के योग्य कारण दे तो सम्यग्दर्शनरूप कार्य अवश्य प्रगट होगा। इसके बिना लाखों कारणों का चाहे जितने काल तक सेवन करता रहे, तथापि उनसे सम्यक्त्वरूपी कार्य प्रगट नहीं हो सकता। इसलिये सम्यक्त्व के सच्चे पुरुषार्थ को समझ और यथार्थ कारण-कार्य का मेल समझकर पुरुषार्थ कर तो तेरा कार्य प्रगट हो। सच्चा पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता।

विविध समाचार

अपूर्व उत्साहप्रेरक मंगलमय अवसर

सोनगढ़—(तारीख 14-8-71) पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। हमारे मुमुक्षु मंडल के अंतर्गत महिला समाज में अग्रणी, धर्मरत्न पवित्रात्मा पूज्य चम्पाबहिन की जन्म-जयंती उत्सव विशेषरूप में मनाया गया था, मुमुक्षु समाज के अग्रणिओं द्वारा संक्षिप्त भाषण में पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन का अनुपम आदर्श जीवन और धर्मप्रभावना के विषय में आपकी पवित्र प्रशस्तिरूप वर्णन किया गया था। आपकी 58वीं जन्म-जयंती के उपलक्ष में हजारों रुपया दान में आये थे। वह सब रकम परमागम मंदिर के निर्माण में लगेगी। इस अवसर पर बाहर गाँव से बड़ी संख्या में अभिनंदन संदेश आये थे।

❀❀❀

सोनगढ़ में प्रति वर्ष श्रावण सुदी 5 से 20 दिन तक जैन तत्त्वज्ञान के यज्ञरूप जैनधर्म शिक्षण शिविर चलता है, वह इस साल भी हुआ, उसमें बाहर से 345 साधर्मीगण आये थे, रात-दिन सर्वज्ञ वीतराग कथित निर्मल तत्त्वज्ञान की वार्ता सुनाई देती थी; विद्वान वक्ताओं द्वारा दो बार कक्षायें, दो बार शास्त्रसभा चलती थी। पूज्य श्री कानजीस्वामी के द्वारा जो अपूर्व लाभ हो रहा है, वह उत्तम है। दो बार अध्यात्मरस से भरा हुआ प्रवचन, एकबार रात्रिचर्चा में शंका-समाधान के लाभ द्वारा सब अपने को धन्य मान रहे थे। शिक्षणवर्ग में माननीय श्री रामजीभाई अपने विपुल शास्त्राभ्यास का लाभ देकर अच्छी तरह पढ़ाते थे; तदुपरांत श्री खीमचंदभाई जे. शेठ, नवलभाई जे. शाह एवं चिमनभाई कामदार भी अपनी-अपनी कक्षाओं में अच्छी तरह पढ़ाते थे।

❀❀❀

धर्म-प्रचार

श्रीयुत धर्मानुरागी सेठ श्री नवनीतलाल चुनीलालजी जवेरी की ओर से अच्छी धर्म-

प्रभावना हो रही है। इस समय ब्रह्मचारी दीपचंदजी माणेकचंदजी जैन का भ्रमण महाराष्ट्र, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश में भी हुआ। महाराष्ट्र में वाशिम में चार दिन और अनसिंग में सात दिन और पुसद में 12 दिन ठहरकर टेपरेकार्ड द्वारा पूज्य स्वामीजी के दिए हुए सिद्धांत-शास्त्र (समयसार, नियमसार, परमात्मप्रकाश आदि) ग्रंथों के प्रवचन सुनाकर उसका स्पष्टीकरण मराठी भाषा में ब्रह्मचारीजी ने सरल भाषा में करके तत्त्वों की जानकारी कराई और मोक्षमार्गप्रकाश, छहढाला तथा लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका द्वारा शिक्षणवर्ग चलाये। आखिरी दिन फिल्म द्वारा तीर्थक्षेत्रों का दर्शन भी कराया।

छिंदवाडा—यहाँ श्री मोक्षमार्गप्रकाशक तथा श्री समयसार के ऊपर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के टेपरिकार्डिंग तथा फिल्म द्वारा तीर्थक्षेत्रों का दर्शन कराके धर्मजागृति की।

जयपुर—शिक्षण-शिविर में पूज्य गुरुदेव के संपर्क में फिल्म-प्रदर्शन का कार्यक्रम हुआ।

रतलाम—यहाँ 5 दिन का कार्यक्रम रहा और दोनों मंदिर में पूज्य स्वामीजी के दिए हुए प्रवचन, भक्तिगीत तथा तीर्थयात्रा की फिल्मों द्वारा धर्मप्रचार हुआ।

इंदौर—यहाँ 10 दिन में 5 मंदिर में—इंद्रभवन, मारवाड़ी मंदिर, रामाशाह मंदिर, नसिया मंदिर, नेमीनगर में अलग-अलग कार्यक्रम पूज्य स्वामीजी के प्रवचन भक्ति-गीत और तीर्थक्षेत्रों की फिल्म द्वारा हुए।

खंडवा—यहाँ 4 दिन के कार्यक्रम हुए।

अशोकनगर—शिक्षण शिविर में खास आमंत्रण से जाकर पूज्य गुरुदेव के टेपरेकार्ड द्वारा प्रवचनों का लाभ तथा दो फिल्मों के द्वारा तीर्थक्षेत्रों के दर्शन कराके वीतराग धर्म की प्रभावना की।

जलगांव—जलगांव के शिक्षण-शिविर का आयोजन श्रीमान सेठ नवनीतलालजी जवेरी की प्रेरणा से हुआ और शिक्षण-शिविर का उद्घाटन श्री सेठसाहब के शुभहस्त से हुआ। इसका प्रचार ब्रह्मचारी दीपचंदजी ने तथा शेठ श्री नटवरलालजी शाह ने शेठ आनंदीलालजी की प्रेरणा से मलकापुर, पारोला, चोपडा, एदलाबाद, कापडगे, कुसुंबा,

धुलिया, सोनगीर, धरणगाँव आदि गाँवों में जाकर बड़े उत्साह से किया और शिक्षण-शिविर को सफल बनाया। —ब्रह्मचारी दीपचंदजी जैन

(इस वर्ष पर्युषण पर्व में धर्म प्रभावना के लिए ब्रह्मचारी दीपचंदजी जैन का कार्यक्रम देमलगाँव राजा नगर में निश्चित हुआ है।)

❀❀❀

भोपाल-पिपलानी—(H.E.L.) (तारीख 17-7-61) यहाँ जिनमंदिरजी की बड़ी आवश्यकता थी, अतः श्री नवनीतभाई सी. जवेरी द्वारा उसका शिलान्यास किया गया था; अब मंदिरजी का निर्माण-कार्य चालू हो गया है। यहाँ पर दिगम्बर जैन वीतराग-विज्ञान पाठशाला चलने लगी है। करीब 30 विद्यार्थी उपस्थित रहते हैं। सायंकाल 7 से 8बजे तक ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी द्वारा बालबोध पाठमाला तथा वीतराग विज्ञान पाठमाला की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। 8से 9 बजे तक शास्त्र-स्वाध्याय के प्रति रुचि जागृत होती जा रही है। प्रत्येक रविवार के दिन भोपाल से श्री राजमल्लजी तथा श्री सूरजमल्लजी पिपलानी में आध्यात्मिक प्रवचन का लाभ देते रहते हैं। —सौभाग्यमल जैन, भोपाल

खंडवा में अपूर्व धर्मप्रभावना—'श्री त्रिलोकसार मंडल विधान' श्री दिगम्बर जैन समाज की ओर से ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी महाराज के तत्त्वावधान में श्रावण सुदी पंचमी से प्रारंभ होकर भादव सुदी दूज को संपूर्ण होगा। जैन समाज उल्लास पूर्वक निम्नलिखित कार्यक्रमों में भाग ले रहा है—

सुबह 5.00 बजे से 6.00 बजे तक जैन सिद्धान्त प्रवेशिका की कक्षा

सुबह 7.00 बजे से 8.00 बजे तक प्रवचन (श्री समयसारजी)

दोपहर 1.00 बजे से 4.00 बजे तक मण्डलविधान पूजा

रात्रि 7.00 बजे से 8.00 बजे तक सामायिक

रात्रि 8.00 से 9.00 बजे तक प्रवचन (श्री मोक्षमार्गप्रकाशक)

रात्रि 9.00 बजे से 10.00 बजे तक भक्ति

ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी महाराज की ओजस्वी वीतराग-विज्ञान रस से पूरित

अमृतमयी वाणी सुनकर जैन समाज में तत्त्वज्ञान की ओर विशेष रुचि जागृत हुई है।

—दयाचंद पुनासा जैन, खंडवा

परीक्षा परिणाम—श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर से इस वर्ष (सन् 1971) की परीक्षाओं में कुल 11281 परीक्षार्थी सम्मिलित हुये। परीक्षाफल 92 प्रतिशत रहा। इन परीक्षार्थियों में बालबोध पाठमाला भाग 1, 2 व 3, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 1, 2, व 3, छहढाला, रत्नकरंड श्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, मोक्षशास्त्र, जैन सिद्धांत प्रवेशिका, पुरुषार्थसिद्धयुपाय तक की परीक्षा में परीक्षार्थी सम्मिलित हुये।

इस वर्ष (सन् 1972 में) विशारद की परीक्षा भी होगी। कोर्स के लिये नियमावली देखें।

❀❀❀

आवश्यक सूचना

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर से संबंधित समस्त स्कूल तथा पाठशालाओं के लिये परीक्षा के प्रवेश फार्म भेजे जा चुके हैं, जिन्हें भरकर शीघ्र भेजें। जिन्हें फार्म प्राप्त न हुये हों, वे पोस्टकार्ड डालकर शीघ्र मंगा लें। भरे हुये फार्म जल्दी आने पर संस्थाओं को आवश्यक सामग्री यथासमय प्राप्त होने में सुविधा रहती है।

बिना मूल्य—श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर की नई (सन् 1972 की) नियमावली निम्न पते पर पत्र डालकर बिना मूल्य मंगा लें।

—मंत्री श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड,
टोडरमल स्मारक भवन
ए-4, बापूनगर, जयपुर-4

❀❀❀

निम्नोक्त पुस्तकें छप रही हैं

(1) अमृतवाणी, (2) अपूर्व अवसर (अमूल्यतत्त्व विचार, द्वादशानुप्रेक्षा, सामायिक पाठ तथा पंडित श्री बुधजनजी कृत समाधिशतक) (चतुर्थ आवृत्ति) (3) समयसार प्रवचन भाग-2 (आवृत्ति-2), (4) जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग-2, (5) समयसारजी मूल (आवृत्ति 4), (6) सत्तास्वरूप (श्री भागचंदजी छाजेड कृत, पंडित प्रवर श्री टोडरलमजी कृत गोम्मटसारजी टीका की प्रस्तावना, पंडित गुमानीरामजी कृत समाधिमरण स्वरूप; तीनों का एक संग्रह) (7) अनुभवप्रकाश।

समाधि का उपाय

ना जानन्ति शरीराणि, सुखःदुखान्यबुद्धयः।
निग्रहानिग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते ॥61॥

[श्री समाधिशतक]

यह शरीर तो जड़ है, यह कहीं सुख-दुःख को नहीं जानता, और इस शरीर में सुख-दुःख होता नहीं; फिर भी मूढ़ जीव उस शरीर में हेय-उपादेय बुद्धि रखकर उसमें द्वेष और प्रीति किया करता है। मिथ्यादृष्टि जीव घर-कुटुंब का त्याग करके जंगल में निवास करे और शुभभाव से स्वर्ग में जाये, तथापि चैतन्य की शांति के बिना शरीर के प्रति द्वेषबुद्धि से ही उसका त्याग है। 'शरीर द्वारा धर्म साधन करने के लिये इसे आहार दूँ, अथवा उपवासादि द्वारा शरीर का निग्रह करूँ'—ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसके अनंतानुबंधी राग-द्वेष हैं, चैतन्य के अमृत का वेदन उसको नहीं है, इसलिये उसे समाधि नहीं किंतु असमाधि है। शरीर को ही उसने सुख का साधन माना, वहाँ उसका पोषण करने की रागबुद्धि है, और शरीर को दुःख का साधन माना, वहाँ उसके ऊपर द्वेषबुद्धि है, इसलिये वह शरीर की चिंता करने से निरंतर असमाधि का ही वेदन करना है; परंतु मैं शरीर से भिन्न ज्ञान-दर्शनस्वरूप हूँ, शरीर में मेरा सुख-दुःख है ही नहीं—ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय नहीं करता। सर्व परद्रव्यों से आत्मा को भिन्न जानकर सभी परद्रव्यों से उपेक्षित होकर ज्ञानानंदस्वरूप में प्रीति करना ही समाधि का उपाय है।

पुस्तक प्रकाशन संबंधी

विज्ञप्ति

निम्नोक्त ग्रंथ छपवाने का निर्णय किया गया है। पुस्तकें छपते ही तुरंत बिक जाती हैं; अत: जिन भाइयों को जिन-जिन पुस्तकों की आवश्यकता हो, वे अपने पूरे पते सहित आर्डर बुक करा देवें।

(1) मोक्षशास्त्र : (सूत्रजी) बहुत बड़ी संग्रहात्मक टीका।

(2) समयसारजी : बन्ध अधिकार प्रवचन : (भाग 5 वाँ)

(3) आत्मवैभव : (जिसमें समयसारजी की 47 शक्तियों पर विस्तृत प्रवचन है)

(4) 'नय प्रज्ञापन' : (जिसमें प्रवचनसारजी शास्त्र के 47 नयों पर विस्तार से प्रवचन हैं)

(5) पुरुषार्थसिद्धि-उपाय : (श्री अमृतचंद्राचार्य कृत ग्रंथ पर पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी की भाषा टीका)

(6) ज्ञानचक्षु : (समयसार गाथा 320 श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका पर पूज्य स्वामीजी के विस्तृत प्रवचन)

(7) समयसार नाटक : (दूसरी आवृत्ति)

(8) छहढाला : (सचित्र-सटीक)

(9) छहढाला : (मूलमात्र)

— छपकर तैयार हैं —

✱ श्री समयसार प्रवचन (भाग-1) : (श्री समयसारजी की गाथा 1 से 12 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन) पृष्ठ 480, मूल्य 4.50

✱ श्री दशलक्षण धर्म : (श्री पद्मनंदि पंचविंशतिका में से दस धर्मों पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

पृष्ठ 104, मूल्य 0.75 पैसे

✱ अध्यात्मवाणी : (स्व. ब्रह्मचारी दुलीचंदजी कृत) पृष्ठ 105, मूल्य 0.85

पता — श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

पोस्ट- सोनगढ़ (सौराष्ट्र) जिला-भावनगर

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं
अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-४)	4.00
8	मुक्ति का मार्ग	0.50
9	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
	'' '' '' भाग-3	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी	0.25
12	समयसार पद्यानुवाद	0.25
13	द्रव्यसंग्रह	0.85
14	छहढाला (सचित्र)	1.00
15	अध्यात्म-संदेश	1.50
16	नियमसार (हरिगीत)	0.25
17	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
18	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
19	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	1.50
20	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
21	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	1.00
22	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.40
23	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.50
24	बालबोध पाठमाला, भाग-३	0.55
25	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
26	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.65
27	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.65
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
28	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	0.25
29	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
30	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
	'' '' (भाग-2)	8.00
31	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
32	मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय	0.50
33	जैन बालपोथी भाग-2	0.40
34	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	4.50
35	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
36	दशलक्षण धर्म	0.75
37	शब्द-कोष	0.20
38	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)